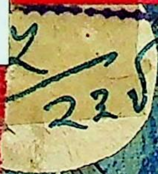






पुस्तकालय

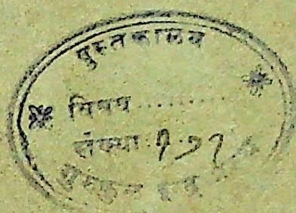
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............ आगत संख्या 28152

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।



ब्रह्मयज्ञ





आत्माराम
अमृतसरी



ब्रह्मयज्ञ

अर्थात्

आर्यों की स्तुति प्रार्थना उपासना

राज्यरत्न आत्माराम (अमृतसरी)
एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर, बड़ोदा

रचयिता

संस्कारचन्द्रिका, सृष्टिविज्ञान, बलप्राप्ति,
वैदिकविवाहादर्श इत्यादि।

इस

प्रकाशक
जयदेव ब्रदर्स

द्वितीय संस्करण १०००

मूल्य ०-१२-० डाक व्यय पृथक्

Printed at the 'Arya Sudharak Press' by Manibhai Mathurbhai Gupta and published by Shantipriya Karelibagh Baroda on 5-4-1917.

बालकों के लिए अपूर्व औषधी

जन्मघुट्टी

" श्रीयुत डाक्टर मक्खनलाल गुप्त आइ-एस-एम-डी कीबनाई हुई **जन्म घुट्टी** को मैंने बालकों को पिलाया। यह घुट्टी छोटे बच्चों के लिये **अतीव उपयोगी** तथा **लाभकारी** है।

आत्माराम



डाक्टर मक्खनलाल गुप्त एण्ड. सन्स का दवा खाना शहर के डाकखाने के पास, अलीगढ़।

धर्मदेव ब्रादर्स, चौराहा अलीगढ़, सिटी।





सूचीपत्र

दर्शा रहा है कि इसके हिंसापरक बलिदान (कुरबानी) अर्थ नहीं। विचारशील इस पर मनन करें।

संध्या तथा गायत्री जप

ब्रह्मयज्ञ के अर्थ उक्त धर्मशास्त्र में 'अध्यापनम्' अर्थात् पढ़ाने के लिए गए हैं आज कल सभ्य जगत् में शिक्षण सबको दिया जाता है और सभ्य विद्वान् लोग सदैव स्वाध्याय करते रहते हैं। जिस समय इस देश में लोग ब्रह्मयज्ञ के अर्थ पढ़ाने के समझे हुए थे उस समय वह सब से प्रथम काम पढ़ाना वा स्वाध्याय समझते थे यह निर्विवाद है।

ब्रह्म शब्द के दो अर्थ हैं एक वेद दूसरे ईश्वर, वेद संबंधी यज्ञ तो वेद वा विद्या का पढ़ाना ही हो सकता है जैसा कि ऊपर के वर्णन से विदित होता है। जब इसके दूसरे अर्थ ईश्वर के लें तो ईश्वर संबंधी कर्म संध्या अथवा स्तुति प्रार्थना और उपासना होते हैं।

पुराने समय में आर्य्य लोग संध्या के लिए किसी मंदिर की ज़रूरत नहीं रखते थे जैसा कि यह श्लोक दर्शा रहा है:—

अपां समीपेनियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्य धीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥

मानवधर्मशास्त्र अ० २ श्लोक १०४

भावार्थः—पानी के निकट जंगल में जा कर शांत हो गायत्री का जप करे।

आज कल लोगों को मन्दिर, पूजा के लिए ढूंडने पड़ते हैं, पुराने समय में मन्दिर ही नहीं किन्तु सारा का सारा गाम छोड़कर जंगल में जाना होता था

मैक्समूलर से विदेशी पण्डित को भी यह बात लिखनी पड़ी कि अति प्राचीन भारत में मन्दिर नथे जैसे कि उसके निम्न लिखित शब्द दर्शा रहे हैं।

" It is true, we have no really ancient temples or palaces in that country. "

(Physical Religion p. 56).

उस पुराने समय में वह आर्य्य गायत्री का जप, करते थे, जैसा कि उक्त श्लोक से सिद्ध है। गायत्री मंत्र ईश्वर स्तुति प्रार्थना और उपासना तीनों अंगो से युक्त है।

स्तुति के अर्थ आज कल कई लोग खुशामद वा अतिरुक्ति के मान रहे हैं जो कि ठीक नहीं। संस्कृतज्ञ जानते हैं कि यथार्थ वर्णन ही स्तुति है। यह भाव आर्य्यप्रजा आजकल भूल रही थी, उस भूल को महर्षि स्वा० दयानन्दजी ने सुधारने के लिए जोजो लेख रूपी यत्न किए उनकी ओर सबको ध्यान देना चाहिये ॥

प्रार्थना यह शब्द प्र+ अर्थ+ णिच्+ नुच् इस प्रकार बनता है। प्रार्थनम् प्रार्थना। अर्थ+ उप याञ्चायाम् = **चाहना** वा **मांगना** इसके अर्थ है। महर्षि दयानन्दजी ने आख्यातिक नामी व्याकरण

के ग्रन्थ में अर्थ धातु का अर्थ **चाहना** लिखा है। कालिदास कृत पूर्व मेघ ३ अथवा ४ श्लोक **याञ्चा मोघा वरमधिगुणेनाधमे लब्ध कामा** । बड़े मनुष्य से चाहा हुआ यदि निष्फल हो तो भी ठीक परन्तु नीच से चाहा हुआ यदि सफल भी होवे परन्तु ठीक नहीं । महा कवि के उक्त प्रमाण से सिद्ध होता है कि 'याञ्चा' शब्द के अर्थ **चाहने** के भी लिये गये हैं।

पंचमहायज्ञविधि के निम्न लिखित प्रमाणों से सिद्ध होगा कि ऋषि दयानन्दजी ने स्वयं प्रार्थना के अर्थ चाहने के लिए हैं यथा "परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर पश्चात् प्रार्थना करे अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहें'

(देखो पंचमहायज्ञविधिः पृष्ट १५)

"यद्वा जातं सकलं जगद्वेत्ति जानाति यः स जातवेदास्तं जातवेदसं सर्वे मनुष्यास्तमेवैकं प्राप्तु मुपासितुमिच्छन्त्वित्यभिप्रायः"

(देखो पंचमहायज्ञविधिः पृ० २५)

"एवंकृतेन कर्म्मणा नोस्माकं नैव कदाचिद्धानिर्भवेदितीच्छामः"

(पंच महा यज्ञविधिः अग्निहोत्र प्रमाण व्या० पृ० ४२)

इन प्रमाणों से विदित होगा कि प्रार्थना के अर्थ **इच्छा** के भी हैं। जब ईश्वर के किसी गुण धारण करने की हम इच्छा करते हैं तो उसको प्रार्थना कहते हैं वा जब ईश्वर से हम **मानसिक**

सहाय चाहें, तो वह भी प्रार्थना है। वेद में इसी भाव को

'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'

इन शब्दों में संकल्प का नाम दिया गया है। साधारण ईसाई भाई प्रार्थना के अर्थ मांगना ले रहे थे पर अब बलेकी आदि ईसाई विद्वान् इस के अर्थ संकल्प वा Aspiration वा शुभ इच्छा के मान रहे हैं। मांगने से फल प्राप्ति के भाव को लेकर वह आलसी बनता है। प्रार्थना (इच्छा) से ईश्वर की जो सहायता मिलती है वह एक शब्द में **मानसिक** कही जा सकती है। जैसा कि निरभिमानता, उत्साह, विज्ञान तथा मानसिक बलादि। उपासना के अर्थ निकट संगति के हैं और उस का फल जीवन सुधार है।

गायत्री मंत्र का पुराने आर्य्य संध्या के समय जप करते थे यह बात धर्म शास्त्र तथा महाभारत और रामायण से सिद्ध है।

जब देश भर में वेदों का पढ़ना और गायत्री जप से जीवन सुधार आरंभ होगा तब ही ब्रह्मयज्ञ पूर्ण रूप से सफल हो सकेगा।

भूगोल के नाना देशों में यदि नाना भाषाओं द्वारा अनुवाद रूप से हम उक्त भावों की सिद्धि के लिये पूर्ण यत्न करें तो इस का फल उत्तम हो सकता है।

प्रथम संस्करण का उर्दु अनुवाद, हैद्राबाद के उर्दु स्कौलर श्रीयुत पण्डित प्रेम नारायणजी ने जिस उत्तमता तथा योग्यता से किया उसके लिए वह मेरे तथा आर्य्यजनता के भारी धन्यवाद के

पात्र हैं। स्वर्गवासी श्रीयुत महाशय वज़ीरचन्द्रजी संपादक आर्य मुसाफिर मेगेज़ीन, जालंधर ने जिस प्रेम से इस ग्रन्थ के प्रचार में मुझे सहायता दी उस के लिये वह मेरे अत्यंत धन्यवाद के योग्य हैं।

इस नऐ संस्करणकी बहुत वर्षों से मांग आ रही थीं पर अनेक विघ्नों के कारण मैं इस का संशोधन न कर सका। अब श्री **शान्तिप्रियजी** ने इस काम को अपने हाथ में लिया और मेरी पूर्ण देखरेख के नीचे संशोधन कर छपने के लिए उत्तम रीति से तैय्यार कर दिया है। *

आर्य सुधारक मुद्रणालय के योग्य मैनेजर श्रीयुत मणीभाई मथुरभाई गुप्त भी धन्यवाद के योग्य हैं जिन्होंने इस देश में जहां हिन्दी का प्रचार नहीं इस को छाप कर हिन्दी भाषा की सेवा की है।

बड़ोदा
मार्च १९१७

सेवक,
आत्माराम
(अमृतसरी)

---

* **सूचनाः**—पंच महायज्ञों की व्याख्या तैय्यार हो चुकी है अनेक सज्जनों की सम्मति यह है कि वह एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में छपे और इस ग्रन्थ ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत नहीं इस लिए वह ग्रन्थ शीघ्र ही स्वतंत्र रूप से प्रकाशित किया जावेगा।

प्रकाशक

ओ३म्

प्रथम संस्करण की भूमिका

सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा से आनन्द धारण करने के लिये सत् चित् जीवात्मा सत्य स्वरूप प्रकृति, को साधन बना कर यत्न करने के स्वभाव से युक्त है। जिस समय जीव आनन्द की उपलब्धि के लिये ब्रह्म यज्ञ रचना आरम्भ करता है, उस समय उस के साधन रूपी मन के सन्मुख प्रथम सन्देह और शंकाएं ही विघ्नों का रूप धारण कीं हुईं उपस्थित हो जातीं और उस को आनन्द के मार्ग से हटा देती हैं। उस का मन ईश्वरीय गुणों के चिन्तन करने के स्थान में, शंकाओं का ही इस प्रकार चिन्तन करता है कि:—

सन्ध्या क्यों करनी चाहिये ? जब ईश्वर अपराध क्षमा नहीं करता और सुख दुःख कर्मों के अनुकूल न्याय से ही देता है, तो फिर उस की प्रार्थना करने का क्या प्रयोजन है ? जब ईश्वर से मांगने पर आनन्द आरोग्यता आदि की प्राप्ति नही हो सकती तो क्यों सन्ध्या मन्त्र निरर्थक न समझे जाएं ?

यह और ऐसे ही अनेक शंका रूप विघ्न मन को ग्रस लेते और जीव को ब्रह्म यज्ञ रचने से प्रथम ही गिरा देते हैं। यह

नियम है कि जब तक मनुष्य सन्देह रहित नहीं होता, तब तक उस की प्रवृत्ति किसी कार्य्य के करने के लिये नहीं हो सकती। मुझे कई अवसरों पर, कई सज्जनों से उक्त शंकाएं कर्ण गोचर हुई हैं। इन तथा इस प्रकार की कई अन्य शंकाओं को यथा शक्ति निवारण करने, पाठमयी प्रचरित प्रार्थना के स्थान में वैदिक प्रार्थना की महिमा जतलाने और उपासना से ब्रह्मबल की प्राप्ति दर्शाने के हेतु मुझे इस पुस्तक के रचने की आवश्यकता पड़ी॥

इसी विषय में, मैंने एक लेख मई १८९४ में लिखा था, जो कि पत्र "**सत्यधर्म्म प्रचारक**" भाग ६ के अङ्क ७, ८, ९, १०, १२, १५ में प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक में अब उस लेख को उद्धृत अर्थात् पुनः प्रकाशित नहीं किया, क्योंकि वह लेख संक्षेप से लिखा गया था। इस पुस्तक में आशय वही है, परन्तु लेख सर्वथा बदला और बढ़ाया गया है। जो विचार उस समय साधारण रीति से बीजवत् प्रकट किये गये थे, उन को अब अधिक पुष्ट किया और विस्तार पूर्वक लिखा है। मेरा तुच्छ विचार है कि जो सज्जन निर्पक्ष हो कर, इस पुस्तक को विचार पूर्वक पढ़ेंगे, उन को वैदिक सन्ध्या की उत्तमता प्रकट हो सकेगी और उन की रुचि, वैदिक स्तुति, प्रार्थना और उपासना की ओर लगेगी॥

धन्यवाद

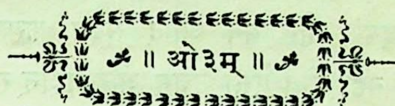
मैं मान्यवर लाला वृन्दावनजी भूत पूर्व मन्त्री आर्यसमाज काशीपुर (मुरादाबाद) का उस सहायता के लिए जो कि उन्हों ने इस पुस्तक के छपते समय संशोधन में दी है, प्रेम पूर्वक धन्यवाद करता हूं ।

तारीख १ सितम्बर १८९६
तदनुसार भाद्रपद कृष्ण
१९५३ विक्रमी।

आर्य्य सज्जनों का तुच्छ सेवक,
आत्माराम
अमृतसर

नोट—जहां जहां ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की पृष्ट संख्या दी गई है वह संवत् १९३४ की छपी हुई पुस्तक की समझनी चाहिये और जहां सत्यार्थ प्रकाश का प्रमाण दिया है वह तृतीय वार की छपी हुई पुस्तक का समझिए ॥





* ब्रह्मयज्ञ *



सृष्टि के महान् अद्भुदालय में मनुष्य ही एक मात्र विचित्र और चिन्तनीय वस्तु है। मनुष्य के शरीर में सर्व ब्रह्माण्ड का भौतिक चित्र और सर्व सृष्टि के भौतिक

---

* ब्रह्मयज्ञ शब्द दो भावों को प्रगट करता है, एक तो वेद संबंधी कर्म दूसरे ईश्वर संबंधी कर्म । इसका कारण यह कि ब्रह्म शब्द के **वेद** और **ईश्वर** दो अर्थ हैं। मानव धर्म शास्त्र अध्याय तीन श्लोक ७० में " अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः " इन शब्दों द्वारा ब्रह्मयज्ञ के अर्थ वेद के पढ़ाने के लिएगए हैं । वेद का पढ़ाना वास्तव में वेद संबंधी कर्म हैं।

पञ्चमहायज्ञविधिः में महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने " तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गत सन्ध्या विधानं प्रोच्यते " इन शब्दों में सन्ध्या को ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत दर्शाया है, और इस से आगे यह शब्द महर्षि ने लिखे हैं " तत्र रात्रिन्दिवयोः सन्धिवेलायामुभयोस्सन्धियोः सर्वैर्मनुष्यैरवश्यं परमेश्वरस्यैवस्तुति प्रार्थनोपासनाः कार्य्याः " जिसका अर्थ यह है कि रात और दिन के संयोग समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए । इस से पाया गया कि सन्ध्या के अंग **स्तुति प्रार्थना** और **उपासना** हैं । इसलिए हम कह सकते हैं कि **स्तुति प्रार्थना** तथा **उपासना** ब्रह्मयज्ञ के अङ्ग हैं।

सारांश ऐसे भरे पड़े हैं, मानो ब्रह्माण्ड ही सच मुच घट में बन्द हो रहा है। इन्द्रियां और मन आदि सूक्ष्म करण जो स्थूल साधनों से प्रतीत नहीं होते ऐसी उत्तम और महान् रचना हैं, कि जिन को अनुभव करते हुए योगी जन भी आश्चर्य के सागर में निमग्न हो जाते हैं। मन आदि से परे मनुष्य का आत्मा एक ऐसी अनोखी स्वतःसिद्ध अल्पज्ञ सत्ता है कि जिस की सहायता के लिये मन और इन्द्रियां आदि साधन वत् ही नहीं, किंतु सर्व सृष्टि और नानाविध रचित पदार्थ एक मात्र इस अनोखे आत्मा की स्वाभाविक इच्छा की पूर्त्ति के लिये भण्डार वत् हो रहे हैं॥

सांसारिक पदार्थ एक मात्र आत्मा की अदृश्य इच्छा के पोषक और सर्व प्रकार से सहायक ही सहायक प्रतीत होते हैं। जितनी विद्याएं चरितार्थ हो रही हैं, वह एक मात्र मनुष्य की इच्छा की पूर्त्ति और सहायता के हेतु हैं। जितने भले वा बुरे कर्म किये जाते हैं वह सब मानुषी शुभ वा दुष्ट इच्छा की भूख को निवारण करने के उपाय ही हैं॥

मनुष्य अपनी इच्छा से प्रेरे जाकर नानाविध विद्या उपार्जन करते, नानाप्रकार के कर्त्तव्य पालते और नानाविध कला कौशल रचते हुए अपने जीवन से इस बात को सिद्ध कर रहे हैं कि इच्छा की पूर्त्ति करना एकमात्र मनुष्य का महान् उद्देश्य है। क्यों साधारण विद्यार्थी अर्द्धरात्री तक सृष्टि नियम के विरुद्ध चलता हुआ पुस्तक से आंखें लगा कर रोग की सामग्री एकत्र कर रहा

है ? केवल इस लिये कि उसकी अन्तरीय इच्छा की पूर्त्ति हो, जो कि कह रही है कि परीक्षा में उत्तीर्ण होने का यही साधन है। क्यों इन्द्रियाराम पुरुष अपनी स्त्री और बच्चों के कपड़े उतार कर भी मद्य पान करने से नहीं लज्जित होता ? केवल इस लिये कि उसकी दुष्ट इच्छा की पूर्त्ति इसी में है। जिन विद्यार्थियों की स्वाभाविक रुचि अर्थात् इच्छा पढ़ने में नहीं होती क्या उनको कोई पढ़ा सकता है ? क्या कोई भी कर्म विना इच्छा के कोई मनुष्य कभी कर सकता है ? सोचने पर निंस्सन्देह प्रतीत होगा कि ज्ञान, कर्म और आनन्द की खोजना करने वाली एक मात्र इच्छा ही है ॥

महर्षि मनु जी ने कैसा उत्तम और सत्य कहा है कि

संकल्प मूलः कामो वै यज्ञाः संकल्प संभवाः ।
व्रतानियम धर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥

मनु० अ० २ श्लोक ३ ॥

" (अर्थ) जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं वा हो जाऊं तो वह कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्य भाषणादि व्रत, यम, नियमरूपी धर्म आदि संकल्पही से बनते हैं ॥ "

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥

मनु० अ० २ श्लो० २ ॥

"(अर्थ) इस संसार में अत्यन्त कामात्मा और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है। वेदार्थ ज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं॥"

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥

मनु० अ० २ श्लो० ४॥

"अर्थ—जो जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं। जो इच्छा न हो तो आंख का खोलना और मीचना भी नहीं हो सकता॥"

मनुष्य की कैसी दुर्दशा होती यदि इस इच्छा के होने पर उसकी पूर्त्ति के साधन और वह पदार्थ जिनके लिये कि इच्छा विद्यमान् है जगत् में न होते। परन्तु कैसा मंगल समाचार है कि दयामय परमात्मा ने मनुष्य की इस स्वाभाविक इच्छा की पूर्त्ति के लिये अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रियां शरीरादि साधन वत् प्रत्येक इच्छा धारी को दे रखे हैं और नानाप्रकार के वाह्य पदार्थ जिन को कि इच्छा धारण करना चाहती है, चारों ओर निर्माण कर दिये हैं। इस लिये मनुष्य के लिये पृथिवी भय और पीड़ा का स्थान नहीं, अन्तःकरण और इन्द्रियां आदि उसको गिराने अथवा दलन करने के लिये नहीं दिये गये, किन्तु सृष्टि सहायता रूप और सर्व इन्द्रियां आदि भृत्य वत् साधन रूप हैं॥

पूर्व इस के कि मनुष्य इन पदार्थों से जो कि चारों ओर

विद्यमान् हैं, अपनी पूर्त्ति के लिये काम ले, इस के लिये यह जानना कि यह पदार्थ क्या क्या काम दे सकते और किन गुण दोषों से युक्त हैं अत्यन्त आवश्यक है, और वह अवस्था जिस में मन पदार्थों के गुण, दोष जानने अथवा उनका यथार्थ ज्ञान लाभ करने में खचित होता है उस को **स्तुति** कहते हैं ॥

इस स्तुति से हम को पदार्थों के गुण दोष, प्रतीत होते हैं, और हम इस ज्ञान के कारण ही दूषित पदार्थों को छोड़ने और उत्तम गुण युक्त पदार्थों को ग्रहण करने के लिये स्वाभाविक ही प्रस्तुत हो सकते हैं। मनुष्य स्वाभाविक ही सहायकारी अथवा हितकारी पदार्थों के ज्ञान की ओर रुचि करता है, और सहायकारी पदार्थों को भली प्रकार जानना ही इष्ट ज्ञान अथवा उपयोगी विद्या है ॥

स्तुति हम को पदार्थों के गुण, दोष बतलाती हुई इष्ट, अनिष्ट का ज्ञान प्राप्त कराती है। इष्टपदार्थ को हम सुख का हेतु समझते हुए उस की कामना करते हैं। अनिष्ट को त्याज्य समझते हुए उस से द्वेष करते हैं। इष्ट ज्ञान के दो भेद हैं, एक अपरा विद्या जिस को व्यवहारिक विद्या कहते हैं और दूसरी पराविद्या जिस को ईश्वर सम्बन्धी अथवा ब्रह्मविद्या कहते हैं। इसी तरह स्तुति के भी दो ही भेद हो सकते हैं, एक अपरा स्तुति दूसरी परा स्तुति। जब हमें सांसारिक पदार्थों के गुणों का बोध होता है उस समय हम इन पदार्थों की स्तुति कर रहे हैं और

जब हमें ईश्वर के गुणों का बोध हो उस समय ब्रह्मस्तुति कर रहे हैं। इस लिये ब्रह्म स्तुति हमें ईश्वर के गुणों का बोधन कराती है और इस स्तुति द्वारा हम ईश्वर के गुणों को जान सकते हैं॥

जब हम स्तुति से सम्पन्न होते हैं, तब ही हम स्तुति किये गये पदार्थ को प्राप्त होने की इच्छा करते हैं, जैसे सूर्य्य की ज्योति नेत्रों को मार्ग दिखाती है वैसे ही स्तुति अथवा ज्ञान आत्मा को ज्योतिरूप नेत्र देता है। इच्छा जब पदार्थों के जानने में निमग्न होती है तब ही उसको उन पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है और यह ज्ञान का सूर्य्य, न थकने वाली इच्छा को सत्य मार्ग दिखाता हुआ उस को मार्ग में चलने से वाञ्छित सुख के लिये स्वाभाविक ही प्रेरणा करता है। यात्री पुरुष सूर्य्य उदय होने पर सीधे और कुटल मार्ग को देखता हुआ सत्य मार्ग में चलने को प्रस्तुत हो सकता है। रात्री के अन्धकार में सत्य और कुटल मार्ग को यात्री नहीं देख सकता, अन्धकारकी दशा में कोई भी कभी यात्रा करने का साहस नहीं कर सकता और यदि करे भी तो सर्वथा रस्सी से बन्धे हुए पशु की तरह इधर उधर चक्र खाता हुआ ठोकरों पर ठोकरें सहन करता अत्यन्त पीड़ा को प्राप्त होता है। इस लिये इच्छा रूपी यात्री के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है, कि वह ज्ञान के सूर्य्योदय में अपने शुभ मार्ग पर चलने का विचार करे, न कि अज्ञान के घनघोर अमावस्या रूपी अन्धकार में कर्म करने का साहस करती हुई ठोकरों पर ठोकरें

खाये और व्याकुल दशा में इस जगत् को नरक और नाना पदार्थों को सहायक के स्थान में शत्रु समझ ले। सत्य ज्ञान अथवा स्तुति के सूर्य्य से जब इच्छा को सत्य मार्ग प्रतीत होने लगता है तो तत्काल ही इच्छा, वाञ्छित सुख के लिये मार्ग में चलने का प्रयत्न करती है। मनुष्य जिस वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेता है उस वस्तु को उपयोग में लाने का उद्यम करता है। यह हो नहीं सकता, कि मनुष्य उजाले दिन में आंखों से निर्भ्रान्त मार्ग को देखे और फिर चलने के लिये पग न उठाए। सीधा सुख दायक मार्ग देखते हुए मनुष्य स्वाभाविक ही उस मार्ग में चल पड़ता है। जब स्तुति ने हमें इष्ट, अनिष्ट पदार्थों का बोधन करा दिया, तो इच्छा इष्ट को ग्रहण करने और अनिष्ट को त्यागने से कब रुक सकती है? जिस पुरुष को ज्ञान हो जाए कि जल तृषा शान्त करता है, तो फिर क्या वह तृषातुर होने पर जल पान करने से रुक सकता है?

पर्वतों के अज्ञानी गड़रिये लोग औषधियों की स्तुति से रहित होने के कारण उन औषधियों को कभी हाथ लगाने का यत्न तक नहीं करते, यद्यपि रात दिन उन के पग में वह बल वर्धक औषधियां बिछी पड़ी रहती हैं। परन्तु ज्ञानी वैद्य उन औषधियों के इष्ट गुणों को जानता हुआ उन के ग्रहण करने के लिये दूर देश से यात्रा करके भी उन को प्राप्त होता है। वाष्प (भांप) के गुण जिस ने जाने उसने उससे बोझ खैंचने का काम लिया,

विद्युत (बिजली) की जिस को स्तुति विदित हुई वही उससे दूतवत् काम लेने लगा ।।

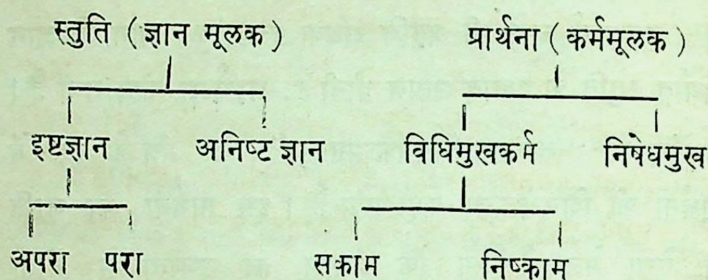
यदि जंगल में जल सरोवर को कोई देखे तो क्या उस में प्रवेश करने का वह साहस कर सकता है ? जिस जल की गहराई किसी को विदित नहीं उस में कौन प्रवेश करना चाहता है, परन्तु उस जल की पूर्ण स्तुति अर्थात् गहराई आदि के विदित होने पर मनुष्य प्रवेश होने का दम मार सकता है । लकड़ी आदि के गुण जानने वाला पुरुष नौका रच कर उस जल पर खेल सकता है परन्तु लकड़ी की स्तुति से रहित मनुष्य कब पदार्थों की ज्ञान पूर्वक संगति अर्थात् मेल करने से यज्ञ रच सकता है ? अज्ञानी पुरुष आयु भर उस जल में तैरने अथवा प्रवेश करने के योग्य नहीं हो सकता । जल की स्तुति से रहित होने के कारण वह जल को भय प्रदाता और हानि कारक ही समझता है ॥

यदि किसी देश में वर्षा न हो तो ज्ञानी लोग पदार्थों के गुण जानते हुए यज्ञ विशेष रचने से वर्षा कर सकते और सुखी हो सकते हैं । कर्म द्वारा किसी सिद्धि को प्राप्त होने के लिये, ज्ञान से पूर्व ही युक्त होना अति आवश्यक है । महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका* में क्या सत्य लिखा है कि ज्ञान के पश्चात् ही कर्म में कर्त्ता की प्रवृत्ति होती है ॥

* (पृष्ट ३४४) इसी स्थल पर स्वामी जी ने दर्शाया है, कि ऋग्वेद ज्ञान काण्ड, यजुर्वेद कर्म काण्ड, और सामवेद उपासना काण्ड के बोधक हैं ॥

इस कर्म करने की प्रवृत्ति अथवा इच्छा का नाम जो ज्ञान अर्थात् स्तुति के पश्चात् उत्पन्न होती है, **प्रार्थना** कहा गया है। यजुर्वेद में "तन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु" यह मंत्र है इस में प्रार्थना को **शिवसंकल्प** कहा गया है। इस प्रार्थना का स्तुति से ऐसा मेल है जैसा कि प्रकाश का उष्णता से होता है। स्तुति रूपी बीज का फल ज्ञान और प्रार्थना रूपी बीज का फल कर्म है। यज्ञ, कलाकौशल आदि का रचन और क्रिया प्रधान कर्म मनुस्मृति में कहे हुए "संकल्प" वा वेदोक्त **शिव-संकल्प**, के ही नाना रूप हैं। ज्ञान के दर्शाये हुए इष्ट पदार्थों की प्राप्ति कराना प्रार्थना वा संकल्प का मुख्य उद्देश्य है। स्तुति को यदि हम ज्ञान काण्ड कहें तो प्रार्थना को कर्म काण्ड समझना चाहिये ॥

जैसे ज्ञान इष्ट और अनिष्ट होता है, वैसे ही कर्म विधि और निषेध मुख होते हैं। जैसे इष्ट ज्ञान के दो भेद अपरा और परा थे, वैसे ही विधिमुख कर्म के दो भेद सकाम और निष्काम हैं। जैसे अपराज्ञान व्यवहारिक था वैसे ही सकाम कर्म व्यवहारिक होते हैं। जैसे ब्रह्मज्ञान का नाम पराज्ञान था वैसे ही उन कर्मों का नाम जो सांसारिक फल भोग की इच्छा को छोड़ कर केवल ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा से किये जाएं निष्काम है ॥



जैसे परा स्तुति हमें ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का बोधन कराती है, वैसे ही निष्काम प्रार्थना हमें ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव की प्राप्ति के साधन दर्शाती है। स्तुति से हम ईश्वर के गुण आदि को जानते हैं, प्रार्थना से उसकी प्राप्ति का साधन रूपी यत्न करते हैं। स्तुति का काम सहायकारी पदार्थों का दर्शन कराना था, प्रार्थना उन सहायकारी पदार्थों से सचमुच कर्म द्वारा सहायता धारण करती है। स्तुति फूल के दर्शन कराती है, प्रार्थना उस की सुगंधी को धारण कराती है। स्तुति ज्ञान प्रधान है, तो प्रार्थना कर्मप्रधान। **ईश्वरीय गुण, कर्म, स्वभावके धारण करने की प्रयत्न द्वारा इच्छा का नाम प्रार्थना समझना चाहिये।** ईश्वर के गुणों को यत्न द्वारा धारण करने के अनुभव पर ही तुच्छ, अल्पज्ञ, जीवात्मा वैदिक प्रयोग में इस भाव को ऐसे प्रगट करता है कि:—"**तेजोऽसि तेजो मयि धेहि**" क्या स्तुति से प्रकाशित हुए जीवात्मा के सत्य सरल

हृदय के स्वाभाविक यह शब्द नहीं हैं ? क्या वह जीवात्मा जो स्तुति नेत्रों से अपने हृदय में ईश्वर के तेजवान् स्वरूप का अनुभव करता है " तेजो मयि धेहि " स्वाभाविक ही नहीं पुकार उठता ? क्या अमृतसरोवर को देखकर तृषातुर स्वाभाविक ही नहीं अनुभव द्वारा कहता कि मैं जल पान करूंगा ? क्या एक ऋषि का दर्शन करते हुए, तुच्छ मनुष्य के मन में यह इच्छा उत्पन्न नहीं होती कि मैं भी ऋषि बनूं और क्या सच्चे मन से ऐसी इच्छा अथवा प्रार्थना के अनुभव करने वाला उसको यत्न द्वारा सिद्ध नहीं करता ? क्या अपने से उत्तम और महान् गुणों को देखते अथवा अनुभव करते हुए हम स्वाभाविक ही उन गुणों को यत्न द्वारा धारण करना नहीं चाहते ? उष्ण देशनिवासी पर्वतियों के श्वेत वर्ण को देखते हुए, बहुधा साबुन आदि के मलने से श्वेत बनने की प्रार्थना मन में किया करते हैं ! क्या सत्य पुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ते अथवा सुनते हुए तुच्छ से तुच्छ मनुष्य कर्म द्वारा उन सरीखे बनने की प्रार्थना नहीं करते ? यह हो नहीं सकता, कि आत्मा एक क्षण भर के लिये, एक सर्व प्रकार से पूर्ण, सर्व शुभगुणों से सम्पन्न, अनुपम, आनन्द मय महान् शक्ति का अनुभव करे और फिर उस के महान् गुणों को यत्न द्वारा धारण करने की वेगवान् इच्छा अथवा प्रार्थना से युक्त न हो। इस स्वाभाविक इच्छा के नाम जो कि स्तुति किये गये

पदार्थों के यत्न द्वारा गुण धारण, करना चाहती है प्रार्थना, वा संकल्प§ है ॥

स्तुति और प्रार्थना दोनों की साफल्यता पुरुषार्थ द्वारा ही होती है। स्तुति अवस्था में यत्न द्वारा जीव अज्ञात पदार्थों से मेल मुलाकात करता था, प्रार्थना अवस्था में उन मित्रों से यत्न द्वारा सहायता धारण करता है ॥

जिस प्रकार उत्तम राज्यसभापति (राजा) के समीप जाने के लिये एक मनुष्य उत्तम स्वच्छ वस्त्र धारण करने का यत्न करता है, वैसे ही सृष्टि के महाराजाधिराज के समीप होने के लिये जीवात्मा प्रार्थना से प्रेरित वह कर्म करता है जिस से उसका शरीर इन्द्रियां, अन्तःकरण आदि वस्त्रवत् स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल हो जायें। जैसे ज्योति की प्राप्ति के लिये स्फटिक मणि को शुद्ध करने की आवश्यकता है, वैसे ही ईश्वर की प्राप्ति के लिए मन आदि सर्व करणों को कर्म, संस्कार आदि द्वारा शुद्ध होने की आवश्यकता है। नियम है कि जब हमें किसी पात्र में कोई वस्तु डालनी होती है तो हम उस पात्र को उस वस्तु के धारण करने के योग्य बनाते हैं। यदि उस पात्र में दूध डालना अभीष्ट हो तो हम यत्न द्वारा

§ **"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" इस वेद मंत्र** में प्रार्थना बोधक संकल्प शब्द पड़ा हुआ है। "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" के पृष्ट ९६ पर स्वामी जी संकल्प के यह अर्थ विस्तार से करते हैं "जो सुख और विद्यादि शुभ गुणों को प्राप्त होने के लिये प्रयत्न से अत्यन्त पुरुषार्थ करने की इच्छा है उसको संकल्प कहते हैं" ॥

उस पात्र के **छिद्रों की पूर्त्ति** करते हैं, ताकि यह दूध को धारण कर सके। आत्मा जिस समय ईश्वरीय गुणों के धारण करने की प्रार्थना से युक्त होता है, तो वह इस प्रकार इसके लिये यत्न करता है। सब से पूर्व वह अपने पात्र रूपी स्वरूप की पड़ताल करना आरम्भ कर देता है, वह अपने सर्व प्रकार के छिद्रों को भली भांति प्रतीत करता हुआ, उन की पूर्त्ति के लिये नानाविध तप रूपी पुरुषार्थ करता है। क्या जब एक पुरुष एक पात्र में अग्नि रखना चाहता है, तो वह उस से पूर्व ही उस पात्र को जल अथवा अग्नि से विरुद्ध गुण रखने वाली वस्तु से रहित नहीं कर लेता ? इस अग्नि से विरुद्ध गुण वाली जलादि वस्तु को पात्र का मल अथवा विघ्न कहा करते हैं। इस लिये प्रार्थना ईश्वरीय गुणों को यत्न द्वारा आत्मा में धारण कराने के लिये, आत्मा को बोधन कराती है कि वह अपने शरीर अन्तःकरण आदि सहित शुद्ध निर्मल हो जाय। यह हमें दर्शाती है कि हम अपने छिद्रों की पूर्त्ति करके अपने आप को योग्य पात्र बनालें। इस की यत्नमय शिक्षा यह है कि तुम ईश्वरीय गुणों को धारण करने के लिये यत्न द्वारा शुद्ध और सर्व छिद्रों से रहित एक योग्य पात्र बन जाओ। हमें प्रथम भली प्रकार जान लेना चाहिये कि शुद्धि क्या वस्तु है। शुद्धि अनुकूलता का दूसरा नाम है। यदि पात्र में दूध डालना है और आगे भी उस पात्र में दूध हो तो यह पात्र शुद्ध माना जाता है, क्योंकि दूध, दूध के अनुकूल है।

यदि इस पात्र में आगे से ही नमक होता और दूध डालना अभीष्ट हो तो हम कहते कि नमक वाला पात्र अशुद्ध है, कारण यह कि नमक, दूध से विरुद्ध गुण वाला है। इस से विदित हुआ कि मल अथवा विघ्न वह वस्तु होती है जो किसी विशेष वस्तु के विपरीत गुण रखती हुई उस के प्रतिकूल हो। लूईकूहने* आदि अनेक पश्चिमी वैद्य सर्व रोग का कारण मल, और मल प्रतिकूलअंश‡ के नाम से पुकारते हैं। इस हेतु से शुद्धि, स्वस्ति का दूसरा नाम और अशुद्धि, मलीनता, रोग का दूसरा नाम समझना चाहिये ॥

मलीन पात्र को शुद्ध करने के लिये हमें जल से धोना और मट्टी आदि से उस को रगड़ना पड़ता है। जल, मट्टी के गुण जानते हुए, हम उन से ज्ञान पूर्वक क्रिया करते हैं ताकि अभीष्ट शुद्धि प्राप्त हो। जहां जहां पदार्थों को शुद्ध करना होता है, वहां वहां हम ज्ञान से जाने हुए पदार्थों को संगति करने से उपयोग में लाते हैं। इस प्रकार ज्ञान और कर्म द्वारा पदार्थों के उपयोग से मल निवारण और शुद्धि प्राप्त करने के लिये यत्न करने का नाम यज्ञ रचना है। यज्ञ † शुद्धि अर्थात् स्वस्ति का हेतु और यज्ञ का फल शुद्धि की प्राप्ति है। कर्म्म काण्ड हम को ईश्वरीय गुण

* Louis Kuhne, author of "The New Science of Healing."

‡ Foreign matter.

† यजुर्वेद का आशय यज्ञ वा कर्मकाण्ड है ॥

धारण कराने के हेतु यज्ञ द्वारा शुद्धि सिखाता और छिद्रों की पूर्त्ति करने से बल युक्त करता है। मनुष्य को ईश्वरीय गुण धारण करने से पूर्व, पात्र और योग्य बनने के लिये शुद्ध होना आवश्यक है। इसी वास्ते मनु जी इस श्लोक में शुद्धि का उपदेश करते हैं।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

म० अ० ५ श्लोक १०९॥

इस के अनुसार

शरीर—स्नान से

मन—सत्याचरण, अर्थात् राग द्वेष के त्याग से

जीवात्मा—विद्या, औरकष्टसहते हुए धर्मानुष्ठान रूपी तपसे

बुद्धि—ज्ञान रूपी विवेक से शुद्ध होती है।

प्राणायाम इन्द्रियों की शुद्धि का एक और साधन है जिस के विषय में पतञ्जलि जी कहते हैं कि:—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

"अर्थात् जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है जबतक मुक्ति न हो तब तक उस के आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है"

जीवात्मा जब ईश्वरीय गुणों को धारण करने की इच्छा से

युक्त होता है, तब वह शुभ कर्म करता है जिन से कि वह शुद्ध हो सके। स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि साधनों द्वारा वाह्य और अन्तरीय अदृश्य इन्द्रियों के मल वह नष्ट करता है । रही सही मन की मलीनता वह सत्याचरण अर्थात् रागद्वेष के त्यागन से, और बुद्धि की ज्ञान से, तथा आत्मा की विद्यामय तप से, दूर करता है। बारम्बार वह ईश्वरीय गुणों के प्रतिकूल भावों को अन्तःकरण से निकालता हुआ शुद्ध अर्थात् ईश्वरीय गुणों के अनुकूल भावों को मन में बसाना चाहता है। हम लोक में देखते हैं कि जब जुलाब अथवा वमन द्वारा शरीर शुद्ध किया जाता है तब शरीर के स्वस्थ होने पर भूख लगा करती है । और यदि इस भूख के लगने पर शुद्ध आहार शरीर में धारण कराई जाए तो बल प्राप्त होता है। जब आत्मा साधनों द्वारा शुद्ध होता है तब उस को परमात्मा के बल धारण करने की आवश्यकता है, अब उस को परमात्मा की भूख लग रही है, अब वह उपासना में निमग्न हो कर ईश्वरीय बल को धारण करता है। जैसे स्फटिक मणि शुद्ध होते ही ज्योति को धारण कर लेता है, इसी प्रकार जीव शुद्ध होने पर ही ईश्वरीय ज्योति को धारण करता अर्थात् उपासना में मग्न होता है। जहां प्रार्थना की समाप्ति होती है वहां ही उपासना का आरम्भ हो जाता है ॥

प्रार्थना अवस्था में जीव ईश्वरीय गुण धारण करने के लिये यम नियम आदि अष्टांग योग के साधन करता हुआ सर्व प्रकार से उन साधनों, अथवा यज्ञों द्वारा शुद्ध होता है, प्रार्थना अवस्था

इसी लिये शुद्धि अवस्था है, प्रार्थना का मुख्य उद्देश्य साधनों द्वारा शुद्ध करना है शुद्ध होते ही जीव उपासना को प्राप्त हो जाता है। उपासना अवस्था में अब साधनों की आवश्यकता नहीं, जब मन्दिर पर सोपान द्वारा मनुष्य चढ़गया तो बस अब अभीष्ट लक्ष पर पहुंचगया। प्रार्थना कर्म मय साधनों द्वारा शुद्धि अर्थात् योग्यता प्रदान कराती है। उपासना शुद्ध योग्य पात्र में बल प्राप्त कराती है। उपासना का दूसरा नाम हम बल प्रदायिनी अवस्था कह सकते हैं। जैसे कि लोहा अग्नि के योग से दाह शक्ति धारण कर लेता है वैसे ही उपासक आत्मा ईश्वरीय बल को उपासना से धारण कर लेता है। बलवान् उपासक आत्मा "पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सब को सहन कर सकेगा" क्या यह उपासना का महान् फल नहीं है ? इसी बल प्राप्ति के हेतु स्तुति, प्रार्थना साधनवत् थे। इस लिये मनुष्य को नित्यप्रति ब्रह्मयज्ञ रचते हुए आत्मिक बल को अवश्य प्राप्त होना चाहिये ॥

कर्म रूपी साधन का फल शुद्धि तथा योग्यता है।

शरीर में कर्म इन्द्रियां मल निकालने से शरीर को शुद्ध रखती हैं, यदि कर्म इन्द्रियां अपना काम न करें तो मल के न निकलने से शरीर अशुद्ध अथवा रोगी हो जाता है। समुद्रमें तरङ्गों की गति उस की शुद्धि का हेतु हैं। वायु शुद्धि के लिये वेगवान् वायु

का चलना ही हित है। मन शुद्धि के लिये सत्य कर्मों का करना ही एक साधन है। जिस प्रकार स्थिर जल में दुर्गन्धी वास करती है उसी प्रकार आलस्य, मल वा अशुद्धि को बढ़ाता है। पुरुषार्थ मल को निकालता और सर्व शरीर इन्द्रियां आदि को शुद्ध करने से उन्हें किसी शुद्ध वस्तु के धारण करने योग्य बनाता है। जो पात्र शुद्ध है वह किसी पदार्थ को धारण करने के योग्य है। शुद्धि का दूसरा नाम योग्यता है। जब भूमि शुद्ध होती है तो कहते हैं कि यह बीज धारण करने के योग्य है। परन्तु भूमि को शुद्ध करने के लिये कर्म करना पड़ता है। कर्म विना शुद्धि प्राप्त नहीं होती। गृह की शुद्धि बुहारी आदि के लगाने, जल आदि सींचन रूप कर्मों से होती है। वैदिक शुभ कर्म इस लिये शुद्धि प्रदाता होने से हमें योग्यता देते हैं। वह उपासना के सोपानवत् हैं न कि बाधक। वह एक मात्र ब्रह्म प्राप्ति के साधन हैं। इसी लिये वेद ने सत्य कहा है कि—

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

यजु० अ० ४० मं० २

अर्थात् हे मनुष्य सौ वर्ष पर्य्यंत अर्थात् जब तक जीवे तब तक शुभ कर्म करता हुआ जीने की इच्छा कर, इस प्रकार शुभ कर्म किये हुए तुझ को लिप्त नहीं करेंगें॥

शुभ कर्मों को करता हुआ मनुष्य शुद्धि को प्राप्त होता है

और शुद्धि आत्मा को ईश्वर दर्शन की योग्यता देती है। महर्षि पतञ्जलि जी का वचन है कि—

किञ्च सत्व शुद्धि सौमनस्यैकाग्रेन्द्रिय जयात्म दर्शन योग्यत्वानि च ॥ योग० अ० १ पा० १ सू० ४३ ॥

" अर्थात् शौच से अन्तःकरण की शुद्धि, मन की प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों का जय, तथा आत्मा के देखने अर्थात् जानने की योग्यता प्राप्त होती है " *

---

* शुभ कर्म का फल शुद्धि और शुद्धि का फल ईश्वर प्राप्ति की योग्यता समझने के लिये हमें ऋग्वेद, मं० ९ सू० ८३, मंत्र २ को भली प्रकार विचारना चाहिये, जिसका अर्थ सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३०६ पर इस प्रकार लिखा है:-

" तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे " ऋ० मं० ९ सू० ८३ मं० २

अर्थात् " जो प्रकाश स्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरण रूप तप करते हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त होने में योग्य होते हैं" ॥

यह जगत् प्रसिद्ध बात है कि ईश्वर प्राप्ति के योग्य बनने के लिये मनुष्य को तप करना चाहिये, और पवित्र कर्म वा शुभाचरण का दूसरा नाम ही तप है, इस विषय में सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३०७ पर स्वामी जी ऐसा लिखते हैं कि—

ऋतं तपः सत्यं तपोदमस्तपः स्वाध्यायस्तपः ।

अर्थात् " यथार्थ शुद्ध भाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरणों में जाने से रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना, पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्म युक्त कर्मों का नाम तप है "

ईश्वरीय गुण, कर्म स्वभाव का दूसरा नाम धर्म्म है।



र्म वह है जो धारण किया जाए, इस लिये ईश्वरीय गुण कर्म, स्वभाव जिनके धारण करने के लिये ही जीव ज्ञान, कर्म रूपी साधनों की सहायता लेता है धर्म कहला सकते हैं। ब्रह्म बल जो उपासना द्वारा जीव को प्राप्त होता है, उसका दूसरा नाम धर्म्मबल है। ब्रह्मबल जो जीव उपासना द्वारा धारण करता है, उस महान् बल को कोई शस्त्र नष्ट नहीं कर सकता मृत्यु भी उस बल को दबा नहीं सकती। मृत्यु पर शरीर तथा मित्र गण तो छूट जाते हैं, परन्तु ब्रह्मबल अर्थात् धर्म्म नहीं छूटता यह सदा संग रहता है। इसी विषय में मनुजी कथन करते हैं कि:—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

मनु० अ० ४ श्लो० २३९॥

परलोक अर्थात् जन्मान्तर में पिता, माता, स्त्री, पुत्रादि सहायता नहीं देते केवल धर्म्म ही सहायकारी साथ रहता है। इसी धर्म्मके मार्ग से न हटनेके लिये महाराजा भर्तृहरि का उपदेश है कि

"न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः"

धीर लोग न्याय अर्थात् धर्म्म मार्ग से एक पग भी बाहर नहीं रखते। स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में इसी

विषय में ऐसा लिखते हैं कि "मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महाअनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों, उन की, रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो, तथापि उस का नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक होसके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे"॥

महर्षि दयानन्द जी का यह लेख दर्शा रहा है कि संसार पर ईश्वर का राज लाने के लिये ही, मनुष्य नित्य यत्न करता रहे॥

ब्रह्म उपासक योगी ही मन्त्र द्रष्टा हो सकता है।

ब्रह्म उपासक का शान्त और निर्पक्ष हृदय वेदमन्त्रों के सत्य अर्थों के प्रकाश को धारण कर सकता है। इस विषय में वेद का भी यह उपदेश है किः—

एहि स्तोमां अभिस्वराभि गृणीह्यां रुव।
ब्रह्म च नोवसोसचेन्द्र यज्ञं च वर्धय॥

ऋ० अ० १, अ० १, व० १६, मं० ४

(अर्थ)—जो पुरुष वेदविद्या वा सत्य के संयोग से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, और उपासना करते हैं, उन के हृदय में ईश्वर अन्तर्यामी रूप से वेद मन्त्रों के अर्थों को यथावत् प्रकाश करके निरन्तर उनके लिये सुख का प्रकाश करता है, इस से उन पुरुषों में विद्या और पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होते ॥

जो पुरुष अथवा स्त्री इस उपासना अवस्थाको प्राप्त हो गई, उसने अपने मनुष्य जन्म को सफल कर लिया, उसने वेदों के दर्शाए हुए परम पद परमात्मा की समीपता प्राप्त करली। उस से बढ़ कर पुरुषार्थी संसार में कौन हो सकता है ? अनेक जन्म जन्मान्तरों के लगातार पुरुषार्थ और शुभ संस्कारों की सफलता ईश्वर प्राप्ति ही है।

उपासक के लिये स्तुति और प्रार्थना दो साधन हैं जिनके द्वारा वह उपासना पद को प्राप्त होता है। उस के लिये ऋग्वेद स्तुति और यजुर्वेद प्रार्थना तथा सामवेद उपासनावत् हैं। वह स्तुति को जागृत प्रार्थना को स्वप्न और उपासना को सुषुप्ति अवस्था समझता है। ओ३म् की अ मात्रा बोधक स्तुति उ मात्रा बोधक प्रार्थना और म् मात्रा बोधक उपासना अनुभव करता है। वह स्तुति का फल ज्ञान रूपी प्रकाश, प्रार्थना का

कर्म रूपी शुद्धि वा योग्यता और उपासना का उद्देश्य * रूपी आनन्द समझता है ।

भूगोल पर उक्त वैदिक स्तुति, प्रार्थना और उपासना के करने वाले अनेक ऋषिमुनि हो गये, जोकि अपने जीवन में ईश्वरीय गुणों और वैदिक शब्दों को सिद्ध कर दिखातेथे। पृथिवी आज उन योगी तपस्वी व्रतधारी आर्य्य सपूतों से शून्य हो रही है । महाभारत के समय में इन्द्रियाराम पुरुषों ने अनार्ष कल्पनाओं से वैदिक सिद्धान्तों को तिरोभूत करना चाहा, परन्तु फिर भी बहुत काल पर्य्यन्त मिथ्या कल्पनाओं के मेघों को दूर करके वैदिक सूर्य्य की रश्मि भूगोल के नाना देशों को जीवन प्रदान करती रहीं । प्राचीन मिश्र, यूनान, रोम आदि देशों के इतिहासों में हम वैदिक ज्ञान, कर्म और उपासना के निर्भ्रान्त चिन्ह पाते हैं, जिन से विदित होता है कि वैदिक विद्या का अखण्ड प्रचार पश्चिमी देशों में भी रहचुका है ॥

हरिवर्ष (यूरोप) के प्राचीन तत्ववेत्ता तथा गुरु " पाईथागोरस " † उसके अनुयायी " अफलातून " और रोम

---

* जीवनोद्देश्य सब का ब्रह्मानन्द ही है, शारीरिक उन्नति सहित अपने नाना उपसाधनों के आत्मोन्नति का साधन वत् ही है, यह लोक परलोक का साधन है । सांसारिक उन्नति आत्मिक उन्नति का साधन है ॥

† **Pythagoras.**

† संस्कृत शब्द पथगुरु का बिगाड़ है ।

देश के विद्यारत्न "सेनेका" के उपदेशों में हम उक्त वैदिक भाव को आगे दर्शाएंगे ॥

हरि वर्ष के प्रसिद्ध गुरु "पाईथागोरस" (पथगुरु) ने किस प्रार्थना का उपदेश किया था ?



पाईथागोरस जो कि यवन देश का विद्या रत्न तथा प्राचीन हरिवर्ष (युरोप) का महान् गुरु और पश्चिमीदेशों में वैदिक सिद्धान्तों का प्रचारक हो चुका है, वह अपने शिष्यों को इस प्रकार प्रार्थना विषय में उपदेश करता था, कि जब जब तुम गृह में प्रवेश किया करो, तब तब तुम अपने से इन प्रश्नों का उत्तर मांगा करो ॥

"मैंने कैसे पाप किया ? मैंने क्या किया है ? मैंने किस काम को अधूरा छोड़ा जिस को कि पूर्ण करना था ?"

इस से उस आर्य्यमुनि का यही प्रयोजन था कि उसके विद्यार्थी तथा शिष्य अपनी न्यूनता और छिद्रों को अनुभव करते हुए, ईश्वरीय गुणों के धारण करने की योग्यता को प्राप्त हो सकें जो कि आर्य्य प्रार्थना का अभिप्राय है ॥

पाईथागोरस अपने शिष्यों को उपदेश देता था कि तुम शांत जीवन व्यतीत किया करो, अपने द्वेषियों से भला करो और प्रेम से उन को अपने मित्र बनाओ। वह उन्हें सिखाता था कि यज्ञ में पशु हिंसा नहीं करनी चाहिये। रोटी फल कंद आदि केवल यज्ञ

में डालने योग्य हैं। उसका कथन था कि किसी अपराध रहित प्राणी को पीड़ा मत दो और उसको मत मारो डायोजनीस* लिखताहै कि उसने ही इस बात का पहिले उपदेश किया था कि " मित्र वर्गों का धन धान्य साझा होना चाहिये, और मित्रता सामान्यता का नाम है। उसके शिष्यों ने अपने धनादि पदार्थ उस को दे रखे और सारे मिल जुल कर इन भोगों से कुटम्बवत् लाभ उठातेथे " उस की पुस्तक पाईथागोरियन सिस्टम § नामी के विषय में लिखा है कि " अफलातून " ने उस को पांच सहस्र रुपैयों से खरीदा था। पाईथागोरस मिश्रदेश में गया जोकि उस समय ज्ञान का भण्डार था, उस ने सिरया † और बाबल ‡ देश की यात्रा भी की थी। कहते हैं कि पूर्व से और विशेष कर मिश्र से उसने पुनर्जन्म का सिद्धान्त लिया। १९ वा बीस वर्ष की आयु में उसने मांस भक्षण त्याग दियाथा। इसकी शारीरिक अवस्था ऐसी उत्तम थी कि पूरे १०० वर्ष का होकर मरा। लिखते हैं कि इसने बहुत से सिद्धान्त मिश्र देश निवासियों, ईरानियों तथा आर्य्यावर्त निवासियों से ग्रहण किये थे॥

---

* Diogenes.

§ Pythagorian System.

† Syria.

‡ Babylon.

अफलातून का इस विषय में उपदेश ।



अफलातून का जन्म नाम "अरस्टोक्लीज़ ‡" था, उसका माथा सुन्दर होने के कारण उस का प्रसिद्ध नाम "प्लेटो †" अर्थात् अफलातून रखा गया। बाल्यावस्था ही से उस का दण्डादि व्यायाम की लगन थी। यह कवि भी था, और बीस वर्ष की आयु में "सुकरात" का शिष्य बना। जिन देशों की "पाईथागोरस" ने यात्रा की थी उनकी अफलातून ने भी की। इसने "इटली" देश के भी दर्शन किये। यवन देश के "एथिन्स *" नामी नगर में आकर चालीस वर्ष की आयु के लग भग उसने अपना गुरुकुल वा विद्या आश्रम वृक्षों की छाया तले स्थापित किया। मृत्यु पर्य्यंत वह इस आश्रम में पढ़ाता और अपने पुस्तक रचता रहा। उसके प्रसिद्ध विद्यार्थी का नाम "अरस्तु" था। "रीपबलिक" नामी पुस्तक में मुनि अफलातून इन चार धर्म्म के लक्षणों का उपदेश करता है॥

(१) न्याय अथवा सत्याचरण
(२) इन्द्रिय निग्रह
(३) धी अर्थात् बुद्धि
(४) धृति

‡ Arestokles. † Plato. * Athens.

वह ईश्वर प्राप्ति के विषय में कहता है कि " ईश्वर की समीपता को उतना ही प्राप्त हो सकते हैं जितनी कि हम अपनी बुद्धि को निर्मल और शुद्ध कर सकें " अफलातून के लेख मनुष्य के भावों और संकल्पों को महान् और उच्च आदर्शों की ओर ले जाते हैं। उसका कथन है कि खान पान तथा मैथुन आदि से मनुष्य के मनोभाव और कर्म अशुद्ध अथवा मलीन हो जाते हैं। यह मांसाहारी न था, इस का भोजन शुद्ध और साधारण था, अञ्जीर फल के खानेका यह प्रिय था, इसकी बनाई हुई फैडरस * नामी पुस्तक में ऐसा कथन है कि जीवात्मा जन्म जन्मान्तरों से ब्रह्माण्ड की यात्रा कर रहा है। इस यात्रा में आत्मा जब अपने संकल्प विकल्प रूपी मन को बुद्धि रूपी विवेक के पूर्ण आधीन कर लेता है, तो उसको प्रोक्ष पदार्थों का ज्ञान अनुभव होता है, जिन का ज्ञान, कि पहिले उसकी आत्मिक दृष्टि के लिये बन्द हो रहा था ; अफलातून स्त्री को पुरुष के तुल्य सर्व प्रकार से " रीपबलिक † " नामी पुस्तक में युक्ति द्वारा मानताहै । उसका कथन है कि मनुष्य से इतर अन्य पशु जातियों में भी नारी शारीरिक और बुद्धि बल में नर के समान होती है ।

इसी पुस्तक में अफलातून ने झूठे ज्योतिषियों का पोल ऐसे खोला है कि " ठग और झूठे ज्योतिषी धनी पुरुषों के द्वार को

* Phœdrus. † Republic.

घेरे पढ़े रहते हैं और धनी पुरुष से कहते हैं कि हमारे आधीन शक्ति रहती है जो कि हम आकाश से धारण कर लेते हैं। और पशुओं की हिंसा कराने, भूत प्रेतादि को बुलाने और भोजन आदि में विषयासक्त होने से हम उस पाप को जो कि एक पुरुष अथवा उसके पिता, पितामहादि ने किया हो दूर कर सकते हैं, और ऐसे वाक्यों की पुष्टि में वह कवियों के वचनों का प्रमाण देते हैं, जिनसे कि पाप करने में प्रवृत्ति शीघ्र हो जाती है॥

इसी पुस्तक का पञ्चम अध्याय जिस में कि वर्णाश्रम की व्यवस्था का वर्णन है, वर्तमान यूरोप के बुद्धिमानों के लिये एक *विचार स्थल हो रहा है ॥

† ज्ञानी पुरुष के लक्षण आर्य्यमुनि अफलातून ने इस प्रकार किये हैं ॥

(१) तत्व ज्ञान के लिये वेगवान् इच्छा का होना ।
(२) असत् से घृणा और सत्य से पूर्ण प्रेम रखना ।
(३) शारीरिक सुखों को तुच्छ जानना ।
(४) धन संचय में उपराम वृत्ति ।

* "मूअर" साहिब के "यूटोपिया" "फ्रान्सिस बेकन" के "नियू एटलेंटिस" हैरिण्टन" के "आशेनिका" में इसी भाव को कि दारिद्रता पृथिवी से नष्ट की जाए पुष्ट किया गया है ॥

(Utopia of Moore) (New Atlantis of Francis Bacon) (Oceanica of Harrington.) † जिस को हम ब्राह्मण कहते हैं ।

(५) उदारचित्त होना ;

(६) न्याय और सुशीलता से युक्त रहना ;

(७) उग्र बुद्धि तथा उत्तम स्मृति रखना ।

(८) नियम और मर्यादा पूर्वक सर्वांश में सम उन्नति करने का स्वभाव रखना ॥

अफलातून जो कि यवन देश का विद्या भूषण तथा महान् पुरुष था ८१ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ । इस की मृत्यु के बहुत पश्चात् "हीरोक्लीज़*" नामी प्रसिद्ध उपदेशकने मिश्रदेश के सकंद्रिया नगर में "पाईथागोरस" के सिद्धांतों का प्रचार किया । यह उपदेशक प्रार्थना विषय में ऐसा कथन करता था कि "तुम ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा यह करसकते हो कि अपने मनोभावको ईश्वरीय गुण कर्म अनुकूलबनालो । बुद्धिमान् पुरुष ही ईश्वर उपासक है, वही प्रार्थना करने में निपुण है । जो ईश्वर उपासना की विधि जानता है वह अपने आत्मा को परमात्मा के समर्पण कर देता है, वही अपने आत्मा को ईश्वर सदृश्य बनाता है, वही हृदय मन्दिर को ईश्वरीय ज्योति के धारण करने का पात्र बनाता है" ॥

अफलातून की मृत्यु के पश्चात् ही सुगम और सरल कविता में "पाईथागोरस" की शिक्षावली, प्रकाशित हुई थी जिस का नाम "आईएम्बीकलस†" ने स्वर्णमय कविता रखा था, इस में

---

* Hierokles † Iambichus

प्रार्थना तथा धर्म्म विषय में इस प्रकार कथन है ॥

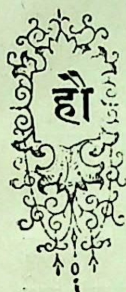
" सोने से पूर्व अपने दिन के किये हुए कामों की पड़ताल करले। मैंने किस कार्य्य में पाप किया, मैंने क्यां कार्य्य किया, मैंने क्या काम अधूरा छोड़ा जिसको कि पूर्ण करना था ? पहले कृत कर्म का ध्यान करते हुए अन्तिम तक का विचार कर और फिर मन से पाप कर्मों पर शोक कर और शुभ कर्मोंसे प्रसन्न हो। इन आज्ञाओं का आचरण कर और इन से प्रेम कर। इस बात को भी जान कि मनुष्यों के दुःख मनुष्यों के अपने हाथों के ही बनाए हुए हैं " ॥

उक्त स्वर्णमय कविता के स्वर्णमयी वचनों पर विचार करते हुए "क्लिफर्ड*" कथनकरता है कि मनुष्य उन पापों के कारण दुःख पाते हैं जिनको रोकना उनकी सामर्थ्य में है, अथवा अविद्या के कारण मनुष्य दुःख के भागी बनते हैं "हौआर्ड विलयम्स‡" इस पर अपनी सम्मति इस प्रकार लिखते हैं कि सर्व युगों में मनुष्योन्नति और मुक्ति के विघ्न अज्ञान और स्वार्थपन ही रहे हैं॥

अज्ञान जैसा कि हम पूर्व सिद्ध कर आए हैं स्तुति के अभाव का दूसरा नाम है। स्वार्थपन, उपासना अथवा धर्म के अभाव का नाम है। स्तुति और उपासना का मध्यवर्ती, कर्म वा प्रार्थना है, इस लिये ज्ञान, कर्म, उपासना को ही मनुष्योन्नति के साधन समझना ठीक है ॥

* Professor Clifford. ‡ Howard williams M.A. Author of the Ethics of Diet.

इटली देश के "सेनेका‡" के उपदेश ।



हौ आर्ड विलयम्स अपनी पुस्तक के पृष्ठ २३ पर लिखता है कि "इटली वाले जिन्होंने कि अपना धर्म्म तथा साहित्य, यवन देशियों से ग्रहण किया था, वह अपने गुरुओं के सदृष प्रख्यात न हुए" इत्यादि वचनों से यह निश्चय होता है कि यवन देशियों ने पाईथागोरस के द्वारा मिश्र तथा आर्य्यावर्त से ज्ञान, कर्म, उपासना में जो शिक्षा ग्रहण की थी, वह उन्होंने इटली देश वालों को सिखाई । यवन देश के मुख्य दृष्टान्त देने के पश्चात् हम अब इटली देश का दृष्टान्त वर्णन करेंगे, जिस से विदित हो सकेगा कि प्राचीन आर्य्यावर्त्ती ज्ञान, कर्म, तथा उपासना की शिक्षा अथवा धर्म का प्रचार इस देश में भी रह चुका है ॥

"सेनेका" जोकि इस देश का महान् पण्डित हुआ है, वह सन् ईस्वी के आरम्भ में ही जन्मा था । उस का वचन है कि "यदि तुम सृष्टि क्रम के अनुकूल जीवन व्यतीत करो, तो तुम कभी निर्धन न होगे, यदि तुम मनुष्य कृत नियमों के अनुकूल चलोगे, तो तुम कभी धनवान् न बन सकोगे । सृष्टिक्रम अनुसार हमें भोग पदार्थ थोड़े आवश्यक हैं, लोक, मर्य्यादा अनुसार अधिक" ॥

आत्मोन्नति के विषय में सेनेका इस प्रकार कथन करता है

---

* Seneca.

कि "हम कब तक ईश्वर से अपने भोग विलास मांगते जायेंगे, क्या हमारे पास सामग्री नहीं है, जिस से कि अपना निर्वाह कर सकें ? हम कब तक मरुस्थलों की नगरों से पूर्त्ति करते जायेंगे ? कब तक लोग निष्फल ही हमारे दास बने रहेंगे ? कब तक सहस्रों जलयान् (जहाज़) प्रत्येक समुद्र से हमारे एक मास के निर्वाह के लिये भोजन लाते रहेंगे ? एक अथवा दो एकड़ भूमि का उपजाओ एक बैल के लिये पुष्कल (काफी) है। एक जङ्गल कई हाथियों का निर्वाह कर देता है। मनुष्य ही केवल ऐसा है जो कि सर्व जल स्थल की लूट से पेट भरता है। यह क्या बात है ? क्या ईश्वर ने हमें ऐसा पेट दिया है, जो कि कभी न भरे। यह हमारे पेट की भूख नहीं किन्तु राग वृत्ति है जो कि सर्व दुःख का हेतु है" ॥

"मैं लोक लाज के लिये काम नहीं करूंगा, किन्तु आत्म तुष्टि के लिये। मैं यह जानते हुए जीवन व्यतीत करूंगा, कि संसार में औरों के उपकार के लिये आया हूं। मैं पृथिवी को स्वदेश समझूंगा। जब मेरी मृत्यु होगी उस समय, मैं इस बात की साक्षी दूंगा कि मैं आत्म तुष्टि और फलदायक व्यवहार का प्रिय रहा, मैंने अपनी तथा अन्य किसी की स्वतंत्रता की हानि नहीं की" उक्त वचन "सेनेका" के उस की मनोप्रातिज्ञा अथवा प्रार्थना के बोधक समझने चाहियें। एक स्थल पर वह कहता है कि "हम दूसरों के छिद्रों को नित्य अपने सन्मुख

रखते और अपने दोषों को पीठ पीछे छिपा देते हैं, बहुत से मनुष्य पापों से क्रोधित नहीं होतें, किन्तु पापी पुरुषों से क्रोधित हो जाते हैं ॥ "

प्रार्थना अथवा निजपरीक्षा* के विषय में वह अपने योग्य गुरु "सेक्सटीअस†" का उदाहरण देता है, जोकि "पाईथागोरस" के अनुयायी होने के कारण, रात्रि को सोने से पूर्व ही अपनी परीक्षा इस प्रकार किया करता था,

" किस मलीन कार्य्य की शुद्धि तुमने आज की है? किस पापका तुमने सामना किया? किस अंश में तुम आगे से अच्छे हो? पशुवत् क्रोध मर्य्यादा के वश होता हुआ अन्तमें सर्वथा नष्ट हो जाएगा, जब यह (क्रोध) प्रतीत करेगा कि मैं प्रतिदिन अपने न्यायाधीश से दबाया जाताहूं। भला इस से बढ़ कर क्या उत्तम रीति हो सकती है, कि हम दिन भर के सर्व कृत कर्मों की पड़ताल किया करें " ॥

एक और स्थल पर वह इस प्रकार " शिव संकल्प " धारण करने का उपदेश करता है ॥

" प्रत्येक पुरुष अपने आप तथा अन्य पुरुषों को ऐसा कहे, कि अमुक पुरुष से वैर भाव रखने से क्या लाभ है, भ्रम में यह न समझे कि हम नित्य पर्य्यंत बने रहेंगे, और इस भ्रम में अपने क्षणभंगुर जीवन को व्यर्थ खोदे? हम युद्ध करने को क्यों

* Self-Examination. † Sextius.

उद्यत् होते हैं ? हम लड़ाइयां क्यों मोल लेते हैं ? क्यों अपनी निर्बलता को भूल कर वैर का भण्डार रच लेते हैं ? हम तुच्छ होने पर क्यों दूसरों को दलन करने के लिये उद्यत् होते हैं ? मृत्यु हमारे सन्मुख खड़ी हुई हमारे निकट आ रही है, जिस क्षण में तुम दूसरे को मारना चाहते हो वही क्षण कदाचित् तुह्मारी ही मृत्यु के लिये हो। इस क्षणभङ्गुर जीवन में हमें मनुष्यपन की उन्नति करनी चाहिये। हम किसी प्राणी के लिये भय और पीड़ा के कारण न बनें" ॥

जब किसी को क्रोध प्राप्त हो तो उस समय उस को अपने से यह कहना चाहिये, कि मुझे उस दास दीन पुरुष को कोड़े लगाने अथवा बन्धन में डालने का क्या अधिकार है, जिसने कि अपशब्द से मेरा तिरस्कार किया है ? क्या उस ने पहली बेर ही मुझे तिरस्कृत किया है ? हमें सोचना चाहिये कि उस ने कितनी बेर हमें प्रसन्न भी किया है ? हमें इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये मानो कि सर्व मनुष्य हमें देख रहे हैं। यदि तुम ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हो तो भद्र पुरुष बनो। वही देव पूजन करता है जो कि उन की उच्च अवस्था का अनुकरण करता है। हमें इस प्रकार कार्य्य करने तथा नियम बांधने चाहियें कि हम मनुष्य की हिंसा से बच सकें। जिस का कि तुम ने भला करना है, उस को यदि तुम पीड़ा देने से बचासको तो भी बड़ी बात है। मानुषी तथा ईश्वरीय शिक्षा इस एक नियम में आगई कि हम

एक महान् शरीर के अङ्गों के * सदृष हैं। ईश्वर ने हम में एक दूसरे से प्रेम करने का तत्त्व भर दिया। हम को परस्पर मिल कर रहने के योग्य बनाया है। उस ने सत्य और न्याय के नियम नियत कर दिये हैं, जिन के अनुसार किसी को दुःख देना अपने दुःख सहन करने से भी महान् भ्रष्ट कर्म है। उसने हमें हाथ एक दूसरे का बोझ बटाने के लिये दिये हैं। हमें प्रश्न करना चाहिये कि पदार्थ यथार्थ में क्या है, न यह कि वह किस नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं ? लोक लाज को तज कर हमें प्रत्येक पदार्थ के गुणों का मान करना और इन्द्रियोंका दमन करना चाहिये। सब से पहले हमें न्यायाचरण (धर्म) धारण करना चाहिये हमारे कर्म कभी शुभ न होंगे जब तक कि हमारा मन ही शिवसंकल्प धारी प्रथम न होगा, क्योंकि इच्छा ही कर्म का मूल है " ॥

एक और स्थल पर वह आत्म बोधिनी पुस्तकों के पठन को निष्फल इतिहासों की अपेक्षा इस प्रकार उत्तम दर्शाता हुआ ज्ञान को शुभ कर्म द्वारा सफल करने का उपदेश करता है।

" तुम "अलिसीज़ §" यवन देश के योधा के विघ्नमय मार्ग को पूर्णता से जानना चाहते हो ? क्यों नहीं अपने जीवन के विघ्नों के रोकने का यत्न करते ? हमें इस बात के सुनने का अवकाश नहीं कि वह योधा किस प्रकार और किस स्थान में

* यह वचन "ब्राह्मणस्य मुखमासीत" के अलंकृत भाव को प्रकट कर रहे हैं।

§ Ulysses.

"इटली" और "सिसली" के मध्य सागर में डूबता वा तैरता रहा। मन के तरङ्ग हमें नित्य प्रति उछाल रहे हैं और पाप कर्म हमारे ऊपर "अलिसीज़" के सर्व क्लेशों को ला रहे हैं। विद्या भी कैसी अद्भुत और उत्तम है, इसके द्वारा तुम चक्रवत् गोलाकार और चौरस चौकोण आकार तथा सर्व नक्षत्रों की दूरी को माप सकते हो। कोई वस्तु नहीं है जिस को कि रेखागणित शास्त्र ने धारण नहीं किया? तुम ऐसे योग्य शिल्पी होने पर क्यों नहीं अपने आत्मा को मापते? मुझे बतलाओ कि यह कितना बड़ा अथवा कितना छोटा है? तुम जानते हो कि सीधी सत्य रेखा क्या है? इस से तुम को क्या लाभ होगा, यदि तुम यह नहीं जानते कि जीवन में सत्य क्या होता है? क्या पठन का कुछ लाभ नहीं, अन्य पदार्थों के लिये तो बहुत है, पुण्यवान होने के लिये कुछ नहीं? केवल पठन से मन पुण्यमय नहीं होता, किन्तु विद्या मार्ग को बतला देती है"॥

"बुद्धि एक महान् और विस्तृत विषय है, इस के उपार्जन के लिये बहुत समय लगाना चाहिये। क्या मैं अपना जीवन केवल शब्द उच्चारण में ही लगा दूं? क्या यह उत्तम प्रतीत होता है कि पढ़े लिखे कर्म करने की अपेक्षा बोलने के ही बड़े प्रिय दिखाई दें? सृष्टि के पदार्थों की स्तुति करना उत्तम है, अपेक्षा इस के कि "सिकन्दर" अथवा उस के पिता की लूट मार, तथा अन्य ऐसे ही पुरुषों का वर्णन किया जावे, जो कि सहस्रों मनुष्यों को

डुबाने वाले जल, तथा भस्म करनेवाली अग्नि के सदृश पीड़ा देकर आप प्रसिद्ध हुए" ॥

"सेनेका" शुद्ध सात्विक भोजन का प्रिय था। यह इटली देश में आर्य्यभाव का प्रचारक, ६५ वर्ष की आयु में काल का कॢवा हो गया ॥

ईश्वर, जीव और प्रकृति के गुण, कर्म, स्वभाव न जानते हुए लोगों ने प्रार्थना का रूपबदलदिया।



पूर्वोक्त दृष्टान्तों से विदित है, कि पाईथागोरस ने जिस वैदिक प्रार्थना का आर्य्यावर्त्त तथा मिश्र देश से उपदेश ग्रहण करके यवन देश में प्रचार किया था वह यवनदेशकी उन्नति का एक साधन हुआ इस उन्नत "यूनान" से "रोम" अर्थात् "इटली" ने इसी प्रार्थना के भाव को धारण किया था। परन्तु आर्य्यावर्त से ईरान, ईरान से मिश्र, मिश्र से यूनान, ओर यूनान से रोम में गई हुई प्रार्थना के शुद्ध अन्तरीय भाव को युरुप के लोग भूलगये आज वह वैदिक प्रार्थना ईसाई मत में शब्द मात्र ही दृष्टि पड़ रही है। इस ने ईश्वर के अखंड नियमों को खंडित समझ कर ईश्वरीय गुण, कर्म, स्वभाव के यथार्थ रूप को न जानकर,

शब्द उच्चारण से इच्छा की पूर्त्ति करना अथवा ईश्वर से किसी वस्तु को मांगने द्वारा प्राप्त करना, प्रार्थना समझ लिया। मुसलमानी मत ने भी जो कि ईसाई मत का ही अनुकरण तथा रूप है, ईसाइयों की प्रार्थना को स्वीकार करके उस का नाम "दुआ" अथवा "नमाज़" रख लिया। यह दोनों मत जीव को कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता नहीं मानते।

ईसाइयों की प्रार्थना का उदाहरणः—

(१) रोज़ की रोटी आज हमें दे (रोटी अर्थात् आत्मिक वा शारीरिक भोजन)।

(२) हमारे अपराध क्षमा कर (अपराध अर्थात् आत्मिक वा शारीरिक पाप)।

(१) एकान्त में वास करते हुए, यदि कोई प्रार्थना अवस्था में आत्मिक तथा शारीरिक भोजन अर्थात् ज्ञान वा रोटी की न्यूनता अनुभव करते हुए उसकी प्राप्ति के साधन करने का यत्नमय सङ्कल्प धारण करे तो कोई भी बुरी बात नहीं है। परन्तु न्यूनता को अनुभव करते हुए उसका उच्चारण कर देना और समझ लेना कि इस उच्चारण मात्र से ही हमें आत्मिक वा भौतिक अभिलाषित वस्तु ईश्वर विना हमारे पुरुषार्थ किये दे देगा, जैसा कि ईसाई लोग मानते है ठीक नहीं है॥

ईसाई लोग भौतिक रोटी की आवश्यकता अनुभव करते हुए

उसके पाठ कर देने से उसकी प्राप्ति समझते हैं, परन्तु अपने आचरण द्वारा वह इस अनोखी प्रार्थना का स्वयं खण्डन करते हैं। यदि वह सत्य हृदय से मानते हैं, कि ईश्वर से रोटी, मांगने पर मिल जाती है, तो फिर क्यों वह हल चलाते, अनाज पीसते और रोटी पकाते हैं?

यदि वह ज्ञान रूपी रोटी की प्राप्ति मांगने से मानते हैं, तो उनको "मिशन" स्कूल बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? क्यों नहीं वह बिना पढ़े के ज्ञानी, प्रार्थना मात्र से हो जाते?

(२) "हमारे अपराध क्षमा कर" यह प्रार्थना भी सत्य नहीं हो सकती। कोई बुद्धिमान इस बात को नहीं मान सकता, कि ईश्वर जिस के गुण, कर्म, स्वभाव, अखण्ड एकरस हैं और जो न्याय द्वारा जीवों के कर्मों का फल प्रदाता है, वह कभी किसी के पाप क्षमा करने से अन्याय करता हुआ, अन्य जीवों को पाप के समुद्र में गिरने का इस प्रकार साहस दे सके। ईश्वर पापी को कभी क्षमा नहीं करता, किन्तु निर्पक्ष हो कर यथावत् दण्ड देता है। यह प्रार्थना ऐसी है, जैसा कि कोई कहे कि मेरे हाथ के नख से सिंह उत्पन्न हो जाए, अथवा मैं वृक्ष बन जाऊं॥

जो पुरुष ज्ञान अर्थात् स्तुति से शून्य है उसकी प्रार्थना अर्थात् मनोभाव इसी प्रकार असम्भव और सृष्टि नियम के विरुद्ध होते हैं। वह ऐसे शब्द उच्चारण करने से समय खोता है।

वैदिक प्रार्थना सदैव स्तुति के अन्तर्गत रहने से कभी असम्भव कल्पना नहीं कर सकती। जो प्रार्थना ज्ञान अथवा स्तुतिजन्य नहीं है, वह ही असम्भव कहलाती है॥

ईसाई वा मुसलमान कभी ऐसी पुरुषार्थ से गिराने वाली प्रार्थना का प्रचार संसार में न करते, यदि उन के मत के पुस्तकों में ईश्वर, जीव और प्रकृति के गुण, कर्म, स्वभाव का यथार्थ वर्णन होता। इन तीन सत्ताओं के अज्ञान के कारण ही ईसाई, मुसलमान आदि लोगों को एक ईश्वर के साथ शैतान मानने की आवश्यकता पड़ गई। उन्हों ने देखा कि जीव पाप पुण्य को करता है, इस लिये पाप के कराने वाले का नाम " शैतान " और पुण्य के कराने वाले ईश्वर का नाम " खुदा " रख लिया।

इस बात को सुनते हुए कि जीव कर्म करने में " स्वतन्त्र और ईश्वरीय व्यवस्था अनुसार फल भोगने में परतन्त्र है " और यह मानते हुए कि ईश्वर सर्वाधार है, कई लोग प्रश्न करते हैं कि " जीवात्मा स्वतन्त्रता से क्यों कर काम कर सकता है, जब कि सर्व विश्व का आधार एक मात्र ईश्वर पर ही है और एक पत्ता तक भी ईश्वर आज्ञा के विना नहीं हिल सकता।

' बेवक्तकिसीकोकुछमिलाहै। पत्ताकहींहुक्मबिनहिलाहै '॥

(मसनवी गुलज़ार नसीम)

इसका उत्तर दृष्टान्त से हम इस प्रकार देते हैं। देखिये सूर्य्य के तेज की सहायता लेकर ही, हम सब पदार्थों को देख

सकते हैं। अन्धकार में कोई भी किसी पदार्थ को नहीं देख सकता, कि अमुक पदार्थ को देखो और अमुक को न देखो। चाहे हम फूल को देखें, चाहे पत्थर को, सूर्य का प्रकाश हमें किसी विशेष पदार्थ के देखने के लिये प्रेरणा नहीं करेगा। जहां सूर्य्य का तेज एक ओर हमें किसी विशेष वस्तु को देखने के लिये प्रेरणा नहीं करता, वहां ही यह दूसरी ओर अपनी सहायता देखने में दे रहा है, परन्तु जिसको चाहें, देखें यह हमारी स्वतन्त्रता है। ठीक इसी प्रकार से, ईश्वर के प्रदान किये हुए साधनों को उपयोग में लाकर अपनी इच्छा अनुसार हम कर्म करते हैं। भले, वा बुरे, शुभ अथवा दुष्ट कर्म करने हमारे ही आधीन हैं। वाक् इन्द्रिय जो कि ईश्वर ने प्रदान की है, इसकी सहायता के विना हम कदापि बोल नहीं सकते, परन्तु इस वाक् से सच बोलें वा झूंठ गाली बकें वा पढ़ें, संस्कृत बोलें वा इङ्गलिश, यह हमारी अपनी स्वतन्त्रता है॥

यदि हम शुभाशुभ कर्म के करने में स्वतंत्र न होते, तो इनका सुख दुःखादि फल भी हमें मिलना न चाहिये था। यदि ईश्वर न्यायकारी और सर्व शक्तिमान् है और शैतान हम से पाप कराता है, तो न्यायकारी ईश्वर को चाहिये, कि शुभाशुभ का फल हमें ही भोगना पड़ता है, जिस से सिद्ध होता है कि हम ही शुभाशुभ कर्म करने में स्वतन्त्र और उस का फल ईश्वरीय व्यवस्था अनुसार भोगने में परतन्त्र हैं। सूर्य्य के उक्त दृष्टान्त से

हम ने दर्शा दिया कि ईश्वर को सर्वाधार सर्वसहायकारी मानते हुए भी हम स्वतन्त्रता से कर्म कर सकते हैं ॥

वैदिक प्रार्थना पाठमय प्रार्थना नही है ।



दिक प्रार्थना जैसा कि ऊपर सिद्ध कर आए हैं, शब्दों का पाठ करना नहीं सिखलाती, प्रत्युत यह मनुष्य को अपनी निर्बलता, दुर्गुण, छिद्र, और मलीनता का, जीवन को पड़ताल करने से बोधन करती हुई, छिद्रों और निर्बलता की पुरुषार्थ और कर्म द्वारा पूर्त्ति करना बतलाती है । यह दर्शाती है कि जो आत्मा अपनी निर्बलता को अनुभव करता है, वही यत्न द्वारा इस निर्बलता को निवारण कर सकता है । यह आत्मा की कर्म करने की स्वतंत्रता और फल भोगने की परतन्त्रता को नष्ट नहीं करती । यह ईश्वर को अन्यायकारी नहीं बतलाती, किन्तु पूर्ण न्यायकारी सिद्ध करती है । ईश्वर, जीव, और प्रकृति के यथार्थ गुण, कर्म, स्वभाव जानने वाला पुरुष ही एक मात्र इस प्रार्थना के महत्त्व को अनुभव कर सकता है ॥



वेद मन्त्रों की प्रयोग शैली को न समझ कर वैदिक प्रार्थना पर लोग आक्षेप करते हैं।



कई पुरुष यह शङ्का करते हैं, कि वेदों में भी पाठमयी प्रार्थनाएं हैं, जिन से विदित होता है कि मनुष्य जाति के प्राचीन पितृ आर्य्य लोग, प्रार्थना अर्थात् उच्चारण मात्र से ही उन पदार्थों की प्राप्ति के अर्थ लेते होंगे, जैसा कि आज कल कई लोग मानते हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि वेद में ऐसा लिखा है कि:—

" तेजोऽसि तेजोमयि धेहि "

अर्थात् परमेश्वर तू तेजस्वरूप है, मुझ को भी तेज दे ॥

हम इस के उत्तर में कहेंगे कि इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य ईश्वर की स्तुति द्वारा, उसके तेजोमय स्वरूप को ज्ञान से अनुभव करता हुआ, मन में तेज धारण करने की इच्छा को करता हुआ यत्न द्वारा इस इच्छा को सिद्ध करने की उक्त प्रतिज्ञा करे, अर्थात् मन में रेज़ोल्यूशन * पास करे, कि मैंने तेजस्वी बनना है। जब वह यह जानता है कि ईश्वर तो हमारे कर्मों का फल प्रदाता है, विना कर्म किये कोई फल नहीं देता, तो वह स्वाभाविक ही अपनी इच्छा अथवा प्रतिज्ञा को पालन करने का पुरुषार्थ करके अपने सङ्कल्प वा प्रार्थना को सफल करेगा ॥

* Resolution.

हां इस में सन्देह नहीं कि इस प्रयोग शैली से कि "ईश्वर तू तेज स्वरूप है मुझ को भी तेज दे" कई लोग भ्रम में पड़ कर यह कह सकते हैं कि इस में तो मांग लेना ही लिखा है। परन्तु यह उन का भ्रम वैदिक प्रयोगशैली तथा उसके भाव न समझने के कारण है। यदि इस मन्त्र का अर्थ इन शब्दों में होता कि "ईश्वर तेज स्वरूप है, हमको भी तेजधारी होना चाहिये" तो फिर स्थूलदर्शी लोगों को उक्त शङ्का कदापि न फुरती। परन्तु अब हम यह दर्शाने से रह नहीं सकते कि वैदिक व्याकरण के नियमानुसार इसका यदि कोई इन शब्दों में अर्थ करदे कि "ईश्वर तेजस्वरूप है, हम को भी तेजधारी होना चाहिये" तो यह अर्थ मन्त्र का भाव नाशक न होने से, ऐसा ही ठीक है जैसा कि "तू तेजस्वरूप है, मुझ को भी तेज दे"॥

वेद मन्त्रों के अर्थ करने के लिये केवल व्याकरणका पुरुष † ही काम नहीं देते, जिस से कि बहुधा पुरुप के लोग भ्रम में पड़ जाया करते हैं। मंत्र के यथार्थ भाव को व्याकरणोक्त पुरुष अपेक्षित न करके प्रकाश कर देना भी वेद का यथार्थ अर्थ कहलाता है। इस लिये उक्त मन्त्र पर शाब्दिक शङ्का कि व्याकरणोक्त मध्यमपुरुष * में तेज मांगा है, शङ्का नहीं समझनी चाहिये॥

---

† Person, Such as I, II and III.
* Second Person.

हमारे इस कथन की पुष्टि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा मुनिवर यास्क जी के वचनों से इस प्रकार हो रही है, जिसके पढ़ने और विचारने से विदित हो जायेगा कि वेद के यथार्थ अर्थ जानने, करने अथवा समझने के लिये प्रयोगशैली * से ही चकित होना अथवा भ्रम में पड़ जाना न चाहिये, किन्तु प्रयोगशैली के आवरण को दूर कर मन्त्र के भाव को समझना वेद का अर्थ जानना है ॥

तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिक्यश्च तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नाम विभक्ति भिर्युज्यन्ते प्रथम पुरुषैश्चाख्यातस्य ॥

अथ प्रत्यक्षकृता मध्यम पुरुष योगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना । अथापिप्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवंति परोक्षकृतानि स्तोतव्यानि । अथाध्यात्मिक्य उत्तम पुरुषयोगा अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना ॥ निरु० अ० ७ ख० १ । २ ॥

(देखो ऋग्वेदादि भा० भू० पृष्ठ ३५२)

(अर्थ) "वेदों के सब मंत्र तीन प्रकार के अर्थों को कहते हैं, कोई **परोक्ष** अर्थात् अदृश्य अर्थों को और कोई **प्रत्यक्ष** अर्थात् दृश्य अर्थों को और कोई **अध्यात्म** अर्थात् ज्ञान गोचर आत्मा और परमात्मा को, उन में से परोक्ष अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में प्रथमपुरुष † अर्थात् अपने और दूसरे के कहने वाले जो, सो,

* Way of expression. † Third Person.

और वह आदि शब्द हैं, तथा उनकी क्रियाओं के अस्ति। भवति। करोति। पचतीत्यादि प्रयोग हैं। एवं प्रत्यक्ष अर्थ के कहने वालों में मध्यम पुरुष अर्थात् तू, तुम आदि शब्द और उनकी क्रिया के असि। भवासि। करोषि। पचसीत्यादि प्रयोग हैं। तथा अध्यात्म अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में उत्तमपुरुष * अर्थात् मैं, हम आदि शब्द और उनकी अस्मि। भवामि। करोमि। पचमीत्यादि क्रिया आती हैं। तथा जहां स्तुति करने के योग्य परोक्ष और स्तुति करने वाले प्रत्यक्ष हों, वहां भी मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है। यहां यह अभिप्राय समझना चाहिये कि व्याकरण की रीति से प्रथम, मध्यम, और उत्तम, अपनी अपनी जगह होते हैं अर्थात् जड़ पदार्थों में प्रथम, चेतन में मध्यम वा उत्तम होते हैं, सो यह तो लोक और वेद के शब्दों में साधारण नियम है। परन्तु वेद के प्रयोगों में इतनी विशेषता होती है कि जड़ पदार्थ भी प्रत्यक्ष हों, तो वहां निरुक्तकार के उक्त नियम से मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है, और इस से यह भी जानना अवश्य है कि ईश्वर ने संसारी जड़ पदार्थों को प्रत्यक्ष कराके केवल उनसे अनेक उपकार लेना जनाया है, दूसरा प्रयोजन नहीं है। परन्तु इस नियम को नहीं जान कर सायणाचार्य आदि वेदों के भाष्यकारों तथा उन्हीं के बनाये हुए भाष्यों के अवलम्बन से यूरोप देश वासी विद्वानों ने भी जो वेदों के अर्थों को अन्यथा कर दिया है सो यह उनकी भूल है और इसीसे वे ऐसा लिखते

* First Person.

हैं कि वेदों में जड़ पदार्थों की पूजा पाई जाती है, जिस का कि कहीं चिन्ह भी नहीं है " ॥

उक्त लेख को विचार पूर्वक पढ़ने से प्रकट होता है कि वेदमन्त्रों की प्रयोगशैली से उनका भावार्थ लुप्त नहीं हो सकता, क्योंकि व्याकरण के नियमानुसार जड़ पदार्थों के वर्णन करने के लिये प्रथम पुरुष और चेतन के वर्णन करने के लिये मध्यम वा उत्तम पुरुष, वेद में आता है। जैसा कि ऊपर दृष्टान्त दिया गया है कि मध्यम पुरुष में असि आदि क्रिया आती हैं वैसा ही हम " तेजोऽसि तेजोमयि धेहि " में मध्यम पुरुष का प्रयोग पाते हैं। यह इस लिये कि यह मन्त्र चेतन विषय को प्रतिपादन करता है। जहां चेतन विषय होगा वहां ही मध्यम वा उत्तम पुरुष का प्रयोग होगा। इस मध्यम पुरुष रूपी प्रयोगशैली को केवल प्रयोगशैली ही समझना चाहिये न कि और कुछ। इस से यह सिद्ध करने की चेष्टा करना कि मध्यम पुरुष के कारण हम ईश्वर से बातें कर रहे हैं ठीक नहीं है। यही नहीं किन्तु जब जड़ पदार्थों के लिये भी वेद में मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है, तो तब यह अभिप्राय नहीं होता कि इस जड़ पदार्थों से बातें कर रहे अथवा मांग रहे हैं किन्तु उनके गुणों को जान कर उपकार लाभकरना ही अभीष्ट होता है। सायणाचार्य अनुयायी मैक्समूलर आदि ने इस नियम को भूल कर कई मन्त्रों से जड़ पूजा और कई मन्त्रों से मन मानी प्रार्थनायें सिद्ध करके प्राचीन आर्य्यों पर

दोष लगाया है कि वे बच्चोंकी तरह सृष्टि कोदेख कर बिलबिलाते अर्थात् प्रार्थनायें करते थे ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ँ सृजेथा-मयं च अस्मिन्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यज मानश्च सीदत ॥ य० अ० १५ मं० ५४

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ट ३०५, ३०६ पर इस मन्त्र का भाष्य करते हुए श्री स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि व्यत्ययो बहुलम् इस सूत्र से इन प्रयोगों में पुरुष व्यत्यय अर्थात् प्रथम पुरुष की जगह मध्यम पुरुष हुआ है * ॥

यदि पुरुष ‡ व्यत्यय से मंत्र का भाव नष्ट हो जाता तो स्वामी जी तथा सूत्रकार ऐसा नियम न मानते । इस लिये वेद के सच्चे आशय को जानने के लिये केवल उस की प्रयोगशैली ही से भावार्थ लगाना ठीक नहीं है ।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ ३५६ पर महर्षि दयानन्द जी इस प्रकार वेदार्थ जानने के विषय में और भी वर्णन करते हैं । " वेदादि शास्त्रों में जो जो शब्द पढ़े जाते हैं, उन सब के बीच में यह नियम है कि जिस विभक्ति + के साथ वह शब्द पढ़े

---

* भूमिका पृष्ट २०० पर ऋ० अष्ठ १ । अ० ८ । व० २१ १० । का अर्थ लिखते हुए स्वामी जी पुरुष व्यत्यय का अन्य उदाहरण देते हैं ॥

‡ Change of Person.

\+ Case.

हों उस विभक्ति से अर्थ करलेना यहबात नहीं है, किन्तु जिस विभक्ति से शास्त्रमूल युक्ति और प्रमाण के अनुकूल अर्थ बनता हो, उस विभक्ति का आश्रय करके अर्थ करना चाहिये, क्योंकि वेदादि शास्त्रों में शब्दों के प्रयोग इस लिये होते हैं, कि उन के अर्थों को ठीक ठीक जान कर उन से लाभ उठावें, जब उन से भी अनर्थ प्रसिद्ध हो, तो वह शास्त्र किस लिये माने जावें, इस लिये यह नियम लोक, वेद में सर्वत्र घटता है "

"यां मेधां देवगणाः०" और "शन्नोदेवीरभिष्टय०" आदि मंत्रों के अर्थ समझने के लिये हमें प्रयोगशैली के आवरण को उतार कर उन के गूढ़ भाव को समझने का यत्न करना चाहिये। इन दो मंत्रों में बुद्धि और परमेश्वर के आनन्द धारण करने का उपदेश है। यदि कोई निरुक्त की रीति न जानता हुआ इन मंत्रों के यह अर्थ समझ ले कि पहले में ईश्वर से बुद्धि और दूसरे में इश्वरीय आनन्द मांगा गया है और बुद्धि वा इश्वरीय आनन्द मांगने अथवा पाठ मात्र से मिल जाते हैं, और इस बात को मन में दृढ़ करके आलसी हो बैठे तो उस को कोई भी बुद्धिमान् नहीं कह सकता। वेद मंत्रों में अनेक पदार्थ यदि प्रयोगशैली की दृष्टि ही से देखें तो मांगे गए दृष्टि पड़ते हैं, परन्तु उन सब मंत्रों का आशय यह होता है कि मनुष्य लोग इन पदार्थों को धारण करने योग्य समझते हुए, इन की प्राप्ति का पूर्ण पुरुषार्थ करें। " तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ता-

च्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं० " आदि मंत्रों का अभिप्राय यह नहीं कि हम इन के पाठ करने से १०० वर्ष की आयु को प्राप्त हो जांयगे, किन्तु इन का यथार्थ अर्थ यही है, कि मनुष्य १०० वर्ष पर्य्यन्त जीने की इच्छा को धारण करते हुए उपाय रूपी पुरुषार्थ से इस इच्छा की सिद्धि करें ।

इस बात को भली भांति निश्चित कर लेना चाहिये, कि केवल मांगने अथवा पाठ करने से हमें किसी पदार्थ की कभी सिद्धि हो सकती है वा नहीं । यदि केवल पाठ करने से वाञ्छित वस्तु का प्राप्त होना असम्भव है, तो ऐसे शाब्दिक आय व्यय को, कि जिस का फल आलस्य हो सच्ची प्रार्थना मानना अज्ञानियों का काम है । बुद्धि आदि कोई भी वस्तु मांगने अथवा पाठ करने से प्राप्त नहीं होती । स्वामी जी ने भूमिका के पृष्ट २०८ पर लिखा है कि " पूर्व जन्म के पाप पुण्यों के विना उत्तम, मध्यम, और नीच शरीर तथा बुद्धि आदि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते " । ऋग्वेद भाष्य भूमिका के पृष्ट २०२ पर ऋग्वेद के एक मंत्र का अर्थ इस प्रकार स्वामी जी ने लिखा है किः—

" हे सुखदायक परमेश्वर, आप कृपा कर के पुनर्जन्म में हमारे बीच में उत्तम नेत्रादि सब इन्द्रियां स्थापन कीजिये, प्राण

सत्यार्थप्रकाश पृ० ३४१ पर स्वामी जी लिखते हैं कि "शन्नो देवीर-भिष्टय०" का मंत्र जल, प्राण और परमेश्वर का विधायक है ॥

अर्थात् मन बुद्धि चित्त अहंकार, बल पराक्रमादि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये "

यदि प्रार्थना के ईसाइयों वाले अर्थ लिये जांय, कि केवल मुख से मांग कर वस्तु प्राप्त हो जाती है, तो हम प्रश्न करेंगे कि उक्त वेद मंत्र के अर्थ का क्या अभिप्राय है ? क्या पाठ कर छोड़ना हम को पुनर्जन्म में शरीर आदि दिलाने का हेतु हो सकता है ? क्या वह लोग जो पुनर्जन्म को नहीं मानते और नास्तिक होने से ईश्वर को भी नहीं जानते और जिन्हों ने कभी किसी प्रकार की प्रार्थना नहीं की, क्या उन को पुनर्जन्म में शरीर नहीं मिलेगा ? यदि मिलेगा तो इस मंत्र के क्या अर्थ हुए ? बात तो यह है कि अनेक मंत्रों में ईश्वर ने अनेक विद्याओं तथा शुभ गुणों के धारण करने का उपदेश किया है। यह मंत्र मध्यम पुरुष रूपी प्रयोगशैली में इस बात का उपदेश दे रहा है, कि मरने के पश्चात् मनुष्य को जन्म मिलेगा। स्वामी जी ने भी पुनर्जन्म का बोधक इस मंत्र को जान कर भूमिका में लिखा है। इस का यह प्रयोजन नहीं है कि पाठ करने से ही पुनर्जन्म होता है।

यजुर्वेद अध्याय ६ के मन्त्र २२ (सुमित्रि यान आप ओषधय सन्तु। इत्यादि) का अर्थ इस प्रकार स्वामीजी ने भूमिका के पृष्ट २०१ पर किया है कि:—

" हे परमेश्वर आप की कृपा से जो प्राण, और जल

आदि पदार्थ तथा सोमलता आदि सब औषधी हमारे लिये सुख कारक हों ''

वैदिक प्रयोग शैली को न समझने वाला पुरुष इस मंत्र को ईसाइयों की प्रार्थना ही समझता है, परन्तु स्वामीजी इस मन्त्र को वैद्यकशास्त्र का मूल बोधक समझते हैं। इस में औषधिओं से उपकार लेने का उपदेश है, न कि पाठ मात्र करने से वैद्य बन जाना प्रयोजन है ॥

इस लेख से यह स्पष्ट हो गया कि वैदिक प्रार्थना शब्द उच्चारण से पदार्थ प्राप्ति का नाम नहीं है। वेद मन्त्र इस प्रकार की प्रार्थना के उपदेश नहीं करते, किन्तु विद्या बोधक होने से मनुष्यों को सत्य उपदेश दे रहे हैं। कोई भी मन्त्र ईश्वर से पदार्थों को मांगने द्वारा प्राप्त करने का उपदेश नहीं देता। निम्निलिखित मन्त्र इस बात की पुष्टि करता है।

उक्थमिन्द्रायशस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे । शक्रो यथा सुतेषुणोरणत्सरव्येषुच । ऋ० अ० ३ सू० १० मं० ५।

अर्थात् " इस संसार में जो जो शोभा युक्त रचना प्रशंसा और धन्यवाद हैं, वे सब परमेश्वर ही की अनन्त शक्ति का प्रकाश करते हैं, क्योंकि जैसे सिद्ध किये हुए पदार्थों में प्रशंसा युक्त रचना के अनेक गुण उन पदार्थों के रचने वाले की ही प्रशंसा के हेतु हैं वैसे ही परमेश्वर की प्रशंसा जनाने वा प्रार्थना के लिये हैं, इस कारण **जो जो पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना के**

साथ चाहते हैं, सो सो हमारे अत्यन्त पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त होने योग्य हैं, केवल प्रार्थना मात्र से नहीं " ॥

हम ने यह भी देख लिया कि निरुक्त आदि की रीति से वेदार्थ जानने के लिये हमें मन्त्रों को प्रयोगशैली से पार हो कर उन के भाव को प्राप्त होना चाहिये। वैदिक प्रयोग शैली को समझते हुए हमने निश्चय कर लिया कि वैदिक प्रार्थना कदापि पाठमयी प्रार्थना के सदृश नहीं है ॥

हिन्दू पौराणिक भाई भी पाठ मात्र को ही प्रार्थना मानते हैं।



श्वर के यथार्थ गुण कथन करना जो ईश्वर स्तुति कहलाती थी, आज अविद्या युक्त पुरुषों ने स्तुति के अर्थ भाण्ड के सदृश तुकें हांकना और " खुशामद " आदि समझ रखे हैं। ईश्वरीय प्रार्थना जो ईश्वर के गुण, कर्म, के धारण करने की पुरुषार्थ द्वारा इच्छाथी, उस के स्थान में आज पाठ मात्र और शब्द उच्चारण से इच्छा प्रकट करने अथवा मांगने का नाम प्रार्थना कल्पित कर लिया, उपासना जो कि ईश्वर को अष्टांग योग द्वारा समीपता का प्राप्त करना था, उस के स्थान में जड़ पदार्थों को नमस्कार करना ही उपासना मान रक्खा है ॥

भारतवर्षी वैदिक प्रार्थना को भूल कर प्रार्थना केवल पाठ

द्वारा ही करते हुए आज आलस्य की मूर्त्तियां बन रहे हैं। हिन्दू लोग यह विचार नहीं करते कि पाठ मात्र कभी सफल नहीं हो सकता है। क्या मीठा कहने से किसी का मुख मीठा हो सकता है यदि पाठ मात्र से सिद्धि होती तो फिर क्यों नहीं निर्वंश सेठों के यहां सन्तान प्रार्थना मात्र से हो जाती। क्या कुत्ते आदि पशु जो कभी पाठ मात्र से इस प्रकार प्रार्थना नहीं करते सन्तान से रहित होते हैं ? प्रार्थना न करने वाले कुत्तों के हां इतनी सन्तान होती है कि बेचारी "मियुनिसिपलकमेटी" को उनके रोकने की चिन्ता खाजाती है। अज्ञानी हिन्दू भाई सन्तान उत्पत्ति के साधन शारीरिक बल को धारण न करता हुआ, बाल्य अवस्था में विषय भोगों और रोगी होने से कर्म्मों द्वारा सन्तान उत्पत्ति का खण्डन करता हुआ, पाठ मात्र से सन्तान चाहता हुआ क्या कभी सन्तानवान् हो सकता है ?

नगरों में रहने वाले नरनारी दुर्गन्ध वायु और जल के सेवन करने से कर्मों द्वारा रोग की सामग्री सञ्चित करते हुए, पाठ मयी प्रार्थना पर ज़ोर लगाते हैं यह समझते हुए कि ईश्वर हमें शारीरिक बलप्रदान कर देगा। वह यह कभी नहीं समझते कि जिस का हम कर्म द्वारा खण्डन कर रहे हैं, उस का शब्द द्वारा खण्डन कैसे हो सकता है ? ग्राम निवासी पुरुष इस अनोखी प्रार्थना को कभी न करते हुए भी कर्म्म द्वारा शुद्ध जलवायु आदि सेवन करते हुए, सुडौल और बलिष्ट ही बने रहते हैं।

पाठमयी प्रार्थना रूपी गोली खाने से किसी की कभी रोग निवृत्ति नहीं हो सकती, जब तक कि रोग निवृत्ति के पुरुषार्थ द्वारा उपाय न किये जाएं ॥

चोरी करने वाला पुरुष भी अपनी दुष्ट इच्छा की पूर्त्ति कर्म द्वारा ही करता है, पाठ द्वारा नहीं । कभी किसी चोर को शब्द मात्र का पाठ करने से धन की प्राप्ति नहीं हुई । इसी लिये रात को सर्व साधनों से युक्त होते हुए, चोर शस्त्रादि सहित एक गृह के अन्दर घुस कर, पुरुषार्थ से ही गृहपति के धन को हरण करते हैं । हिंसक लोग पशुओं का बध शब्द मात्र से नहीं करते किन्तु छुरी आदि के प्रहार से कर्म द्वारा अपने दुष्ट कार्य्य को करते हैं ॥

जिस समय " महमूद ग़ज़नवी " ने पुरुषार्थ द्वारा सोमनाथ के मन्दिर पर धावा किया था, उस समय हिन्दु लोग जो कि, ज्ञान कर्म, तथा उपासना की महिमा भूल चुके थे, मुहूर्त देखने में प्रवृत्त हुए, और जब कोई भी युद्ध का मुहूर्त न देखा, तो जड़ मूर्त्ति के आगे सीस निवाय कर गिरपड़े और अत्यन्त दीनता से प्रार्थना करते थे, कि हे महादेव ! म्लेच्छों से हमारी रक्षा कर । परंतु ऐसी प्रार्थना करने से क्या हो सकता था ? सोमनाथ की मूर्त्ति जो हिंदुओं की प्रार्थना स्वीकार करने वाली और उनको सिद्धि के देने वाली मानी जाती थी, अपने आपको भी न बचा सकी। यह जो कुछ दुःख हिन्दुओं को भुगतना पड़ा, यह उनके अपने

ही अज्ञान, पाप और आलस्य का फल था। परन्तु शोक तो यह है, कि हिन्दुओं ने अपने इस अज्ञानमय आलस्य से कुछ भी शिक्षा ग्रहण न की। आजकल सहस्र हिन्दू नर, नारी जड़पदार्थों से संतान पाठमात्र से मांग रही हैं। लाखों हिन्दू व्यवहार कार्य्य में पाठ मात्र से ही उन्नति चाहते हैं। करोड़ों हिन्दू राम नाम के पाठ से ही कामना की पूर्त्ति समझे हुए हैं॥

सन् १८९१ ई० में हिन्दू पौराणिक लोगों के प्रसिद्ध गुरु श्री विशुद्धानन्द जी ने मुरादाबाद नगर में वसन्त ऋतु में एक व्याख्यान दिया था, जिस में यह कहा था कि राम नाम के उच्चारण करने से इतने पाप नष्ट हो जाते हैं, जितने कि शरीर पर लोम हैं। क्या हम नित्य प्रति नहीं देखते कि हिन्दू साधू जो स्वयं दर दर के भिखारी बन रहे हैं, वह वैश्य लोगों को ईश्वर से धन दिलाने के लिये प्रार्थना कर देते हैं। यदि उन की प्रार्थना सफल हो सकती तो स्वयं वैश्य लोगों से न मांगते फिरते॥

कोई हम से पूछ सकता है कि इस प्रकार की पाठमयी प्रार्थना करने का क्या कोई भी फल नहीं है? इस के उत्तर में हम यह कहते हैं कि बोलने का अभ्यास बढ़ना, इस के विना एक मात्र आलस्य ही फल है। प्राचीन समय में यदि पाठ मात्र से सिद्धि मानी जाती तो कपिलाचार्य्य जी ऐसा कभी न लिखते कि तीनों प्रकार के दुःखों की निवृत्ति यथार्थ पुरुषार्थ से हो सकती है। पतञ्जली जी अष्टांग योग को कभी ईश्वर प्राप्ति का साधन

न बतलाते, भृगु जी मनु जी के वाक स्मृति में लोगों को कर्त्तव्य का उपदेश करने के लिये कभी न लिखते। ऋषि, मुनि, वर्णाश्रम धर्म्म के सेवी और नित्य, नैमित्तिक कर्मों के करने वाले कभी न होते, यदि वह पाठ मात्र से ही सिद्धि समझते। हमें इस आलस्य रूपी पाठमयी प्रार्थना को तज कर वैदिक प्रार्थना, जोकि शुभगुणों की इच्छा अथवा संकल्प को यत्न द्वारा सफल करना सिखलाती है, ग्रहण करनी चाहिये। महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश (पृ० १८५) में कैसा उत्तम तथा सत्य उपदेश इस प्रकार किया है कि:—

"मनुष्य जिस बात की प्रार्थना * करता है, उसको वैसा ही वर्तमान § करना चाहिये"।

वैदिक सच्ची प्रार्थना के महत्त्व को अनुभव करने के लिये योगी राज स्वामी दयानन्द का यह लेख न्यून से न्यून दशबार विचार पूर्वक अवश्य पढ़ना चाहिये। इस में स्पष्ट दिखलाया गया है कि मनुष्य जिस बात की प्रार्थना रूपी इच्छा करता है उसको इस इच्छा की सफलता के लिये वैसा ही यत्न करना चाहिये। सत्यार्थ प्रकाश पृ० १८६ पर फिर ऐसा वचन इसकी पुष्टि में स्वामी जी लिखते हैं कि:—

"जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते, वे महा मूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है,

---

* Aspiration. § वर्त्तना।

उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा" ॥

सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ३८४ पर पुनः उनका कथन है कि:—

"पश्चाताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो, इसी बात से जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं..................वेदों को सुनते हो बिना भोग के पाप पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त रहते, जो भोग के बिना निवृत्ति माने तो ईश्वर अन्यायकारी होता है" ॥

सत्यार्थप्रकाश (३२८ से ३३०) में एक स्थल पर ऐसा लिखा है कि:–

"गङ्गा गङ्गा वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता, जो छूटे तो दुःखी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे, जैसे आज कल....लीला में पाप बढ़ कर हो रहे हैं, मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नाम स्मरण वा तीर्थ यात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी, इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं। पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है..............नाम स्मरण इस को कहते हैं कि "यस्य नाम महद्यशः" परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्म्म युक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्व शक्तिमान्, आदि नाम परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से हैं, जैसे ब्रह्म सब से बड़ा........ ....ब्रह्म विविध जगत् के पदार्थों का बनाने हारा, विष्णु सब में व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव सब देवों का देव,

रुद्र प्रलय करनेहारा आदि नामों के अर्थों को अपने मन में **धारण** करे, अर्थात् बड़े कामों सें बड़ा हो............इस प्रकार, परमेश्वर के नामों का अर्थ जान कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है"।

सत्यार्थप्रकाश (पृ० ३१०) में लिखा है कि वेदोक्त नाम स्मरण इस प्रकार करना चाहिये कि:—" जैसे न्यायकारी, ईश्वर का एक नाम है, इस नाम से जो इस का अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सब यथावत् न्याय करता है, वैसे उस को ग्रहण कर न्याय युक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना, इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है " इस से पूर्व एक और स्थल पर लिखते हैं कि " नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता, जैसे कि मिश्री मिश्री कहने से मुंह मीठा और नीम नीम कहने से कड़वा नहीं होता, किन्तु जीभसे चाखनेही से मीठा वा कड़वापन जाना जाता है "।

श्रीमान् महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी " मोनियर विलियम्स* " के खंडन में पृ० १५,१६ पर इस विषय में इस प्रकार लिखते हैं:—

" मेरा यह कहना कि उपासना मनुष्य के हृदय रूपी जीते जागते मन्दिर में होनी चाहिये, कपोल कल्पित मत समझिये।

---

* Monier Williams.

सच्चा ब्रह्मयज्ञ केवल यही है। यह प्रार्थना ऐसी स्वाभाविक और चुपचाप रीति से उत्पन्न होती है, जैसा कि फूलों से सुगन्धी। इस के लिये **समाजों के नियत वचन, किसी पुरुष स्त्री के बनाए हुए भजन वा संगीत मालाओं की आवश्यकता नहीं है। सच्ची प्रार्थना एक शान्त हृदय अथवा नित्य के पुण्य मय जीवन का धारण करना है।** कृष्ण जी का वाक्य है कि:—"ईश्वरः सर्व भूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति" अर्थात् ईश्वर मनुष्य के अन्तर तम हृदय में वास करता है............हमें सत्य के जिज्ञासुओं की तरह इस बात को मान लेना चाहिये कि **कृत्रिम सामाजिक प्रार्थना सर्वथा मिथ्या है, प्रार्थना, हां सच्ची प्रार्थना शब्दों द्वारा कभी नहीं होती॥"**

"मन को हिलाने वाले, अश्रुपात कराने वाले उपदेशों * में तो कभी हो नहीं सकती। केवल सच्ची प्रार्थना जो कि वेद सिखलाते हैं, और जो कि हमें करनी चाहिये वह पूर्ण सत्य का आचरण, मन और इन्द्रियों का निग्रह, ब्रह्मचर्य्य का धारण करना, आप्त पुरुषों से विद्या सीखना और राग द्वेष से रहित हो निष्काम होना है। संक्षेप से वैदिक प्रार्थना यही है। यदि तुम चाहो तो इसकी तुलना, पृथिवी भर के मत मतान्तरों की प्रार्थना से करलो। यही एक सत्य चित्त आनन्द को साक्षात करने के लिये हमें योग्य करा सकती है और अन्य कोई नहीं" (खण्डन मोनियर विलियम्स)

* Sermons.

" जिज्ञासु की प्रार्थनाएं ¶ केवल ज्ञान और पुण्य संबन्धी हैं........ उसकी शुद्ध अर्थात् राग द्वेष से रहित बुद्धि के लिये उपासना, विचार, श्रद्धा, और शान्ति वह मार्ग खोल देती हैं जहां से कि विज्ञान सूर्य्य की रश्मि शान्ति से प्रवेश करती हुई उस के भाव और बुद्धि को तेजोमय बना देती हैं।.............. उक्त लेख का सारांश यह है कि यह शुद्ध बुद्धि है न कि पाठमयी प्रार्थना †, जोकि आत्माको ईश्वर दर्शन के योग्य बना सकती है। अत्यन्त सच्ची प्रार्थना जो कि हम कभी भी करें **वह पुण्यमय पुरुषार्थ ही है**, जो कि हमें इस **योग्य** बना सकता है कि जिस योग्यता द्वारा हम सर्वज्ञान के सरोवर से बुद्धि में विज्ञान धारा को धारण कर सकें........इस बात को न जान कर ही कि शुद्ध बुद्धि सर्वव्यापक ईश्वरीय सत्ता के दर्शन कर सकती है, लोगों ने जगत् व्याख्यात मत मतांतरों की पाठ-मयी प्रार्थना रूपी § गोलियें और अश्रुपात कराने वाले उपदेश शिर की पीड़ा को निवारण करने के लिये उपायवत् ‡ घड़ लिये हैं। इस से भी अधिक स्पष्ट महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी उसी पुस्तक

¶ Aspirations. † Prayer. § Prayer doses.

‡ देखो पुस्तक " अन्तरीय जीवन की सत्ताएं " पृ० ९-१० श्रीमान् महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी एम. ए. कृत

(The Realities of Inner Life by Mahatma Sriman Pandit Guru Dattaji M. A. Professor of Seience Government College Lahore --)

अर्थात् " अन्तरीय जीवन की सत्तायें " के पृष्ट ६ पर इस प्रकार लिखते हैं। इस से बढ़ कर सारगर्भित लेख पाठमयी प्रार्थना के खण्डन में और क्या हो सकता है! पाठक गण विचार पूर्वक इस लेख को पढ़ें ॥

" जैसा कि शारीरिक रोगकी अवस्था में नवीन छलरूपी औषधियों को रोग निवृत्ति के उपाय और मनुष्य के सुधार की रेचक औषधी मान रखा है वैसेही आत्मिक छल रूपी औषधियों के बेचने वालोंका एक पन्थ पाठमयी-प्रार्थना को आत्मिक रोगों के लिये सब से उत्तम वमन कराने वाली और रेचक औषधी बतलाता है। यह * पन्थ प्रत्येक को रात दिन औषधी रूपी पाठमयी-प्रार्थना के घूंट भर २ पीने को कहता है। इस औषध सेवन से आत्मिक रोग उत्पन्न हो कर वृद्धि को प्राप्त होते हैं, और आत्मिक बल के घटने से जो निर्बलता और मूर्छा उत्पन्न होती है उस को भ्रम से पाठमयी प्रार्थना का शुद्धि रूपी फल मान रक्खा है। पाठमयी प्रार्थना का सेवक आरम्भ में तो आत्मिक विकार, रोग और पीड़ा का अनुभव करता है, परन्तु आगे चल कर पाठमयी प्रार्थना की वृद्धि के संग संग वह इन रोगों का मित्र हो जाता और उन को स्वयं मूर्छित हो जाने से मार्ग की तुच्छ धूल समझने लगता है, अन्त में जा कर वह इन रोगों का ही दास बनता और स्वयं मूर्छित हो जाता है और इस आत्मिक मूर्छा को भ्रान्ति से शान्ति समझता हुआ इस को आनन्द, मुक्ति

* हम अनुमान से कहते हैं कि यह पन्थ ब्रह्मसमाज है।

और ईश्वर दर्शन कह देता है। इस पाठमयी प्रार्थना द्वारा उस का आत्मबल नाश होने लगता है और इसी को वह भ्रम से विषयों की मृत्यु समझता है। यह छल रूपी औषधी अर्थात् **पाठमयी प्रार्थना अज्ञानता की अग्नि, लोभ की ज्योति, अतृप्त वासनाओं की अंगारी, वैर की उष्णता और उपद्रव का रूप है,** इस शान्ति को जोकि वास्तव में मन की मूर्छा है बुद्धि की मृत्यु समझना चाहिये, और बुद्धि के नाश होने पर ही काम, क्रोध पीड़ा, हर्ष, शोक और अन्य उपद्रव उपजते हैं। परन्तु ईश्वरीय ज्योति का सच्चा प्रकाश ज्ञान की * वृद्धि † संकल्प की शुद्धि और आत्मिकबल § के बढ़ने पर हो सकता है। सच्चा विवेक तब ही उदय होता है। हमें वाह्य चिन्हों को भूल से अन्तरीय शांति नहीं समझना चाहिये, केवल चमकनेसे ही धातु स्वर्ण नहीं बन जाता" ॥

ईशोपनिषत् का अङ्गरेजी में भाष्य करते हुए महात्मा पं० गुरुदत्त जी प्रथम ही कृत्रिम पाठमयी प्रार्थना को उस भाष्य में खण्डन करते हैं माण्डूक्योपनिषत् के भाष्य में भी वह महात्मा वैदिक प्रार्थना को **संकल्प** दर्शाते हैं ॥

---

* ज्ञान की वृद्धिका मूल स्तुति है। † संकल्प की शुद्धि का दूसरा नाम शिवसंकल्प वा शुभ इच्छा है, इसी को वैदिक प्रार्थना भी कहते हैं जोकि पाठमयी प्रार्थना से पृथक् है।

§ आत्मिकबल का मूल उपासना है।

मदरास के पादरी मरडक की शङ्का ।

वेदों के " वृत्तान्त † " नामी पुस्तक में पादरी मरडक इस प्रकार वेदों की प्रार्थना के विषय में लिखते हैं कि " बहुत से लोग सांसारिक होते हैं और उन की प्रार्थनायें क्षणिक सुखों के लिये होती हैं । धन, सन्तान, रोग निवृत्ति, और सांसारिक शत्रुओं पर विजय पाना उन का उद्देश्य होता है । थोड़े लोग हैं जो धर्म रखते और पाप की क्षमा, पवित्रता, और ईश्वरीय सम्बन्ध को चाहते हों " ।

" वैदिक समय के आर्य्य प्रार्थना की उत्तमता के ठीक मानने वाले थे । वेद बहुत करके प्रार्थनाओं का भण्डार हैं, वेद मंत्र बहुधा देवताओं की प्रशंसा करते हुए आरम्भ होते हैं और देवताओं को कल्पित गुणों, बड़े बड़े कार्य्यों और कभी कभी निज रूप के सौन्दर्य से युक्त करते हैं "

पादरी मरडक के उक्त वचन ठीक नहीं हैं । वैदिक प्रार्थना पाठमयी प्रार्थना से क्या सम्बन्ध रखती है ? वैदिक प्रार्थना शुभ गुणों के धारण करने की इच्छा को कर्म द्वारा सिद्ध करना बतलाती है, न कि शाब्दिक आय व्यय निष्फल करना सिखलाती हो । वैदिक प्रार्थना करने वाला कभी आलसी नहीं हो सकता । ईसाई भाई मानता हैं कि बिना कर्म किये केवल मांगने

† " An Account of The Vedas " published by the Christian Tract Society Madras.

से ही ईश्वर अमुक पदार्थ दे देगा। ईसाइयों की प्रार्थना हिन्दुओं के राम नाम उच्चारण के सदृश युक्ति शून्य और आलस्य प्रदाता है। वेद में जिन मंत्रों द्वारा उपदेश किया गया है कि मनुष्यों को धन, सन्तान से युक्त और शत्रुओं से धर्म्म युद्ध द्वारा रहित होना चाहिये, उन मंत्रों का यह आशय नहीं है, कि यह पदार्थ केवल मांगने अथवा पाठ करने से किसी को प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु वेद ने सांसारिक और पारलौकिक सुख के साधनों को दर्शाते हुए उन की प्राप्ति का यत्न द्वारा सत्य उपदेश दिया है।

कौन बुद्धिमान् मान सकता है कि पाप क्षमा हो सकते हैं? पादरी मरडक को यह लिखते हुए विचार करना चाहिये था कि मैं क्या लिख रहा हूं? पवित्रता और ईश्वरीय सम्बन्ध यह मनोहर शब्द हैं, परन्तु इन की प्राप्ति के साधन ईसाइयों के पास कुछ भी नहीं। ज्ञान, कर्म, उपासना एक मात्र वैदिक साधन हैं,। यह सत्य है कि वैदिक समय के आर्य्य वैदिक प्रार्थना की उत्तमता को मानते थे, इस से पादरी जी ने यह कैसे सिद्ध कर लिया कि वह पाठमयी प्रार्थना को भी मानते थे? वेद मंत्रों की प्रयोगशैली को न जानकर मरडक जी कदापि भूल से वेदों को पाठमयी प्रार्थनाओं के भण्डार समझ बैठे हों। वैदिक प्रयोगशैली को समझने की विधि हम ऊपर निरुक्त के प्रमाण से लिख आये हैं। पादरी जी को देवता के अर्थ भी नहीं आते, वेद मंत्रों में देवता * के अर्थ मंत्र के विषय के होते

* Subject.

हैं। वेद में कोई कल्पित प्रशंसा नहीं, कोई भी कल्पित वाक्य तक नहीं है। उन को जानना चाहिये कि वेद ज्ञान के भण्डार कर्म और उपासना के सच्चे कोष हैं।

पाठमयी प्रार्थना का इंगलेण्ड में खण्डन।



ईसाइयों की प्रार्थना पापों का पाठ करना सिखाती उनका ईश्वर से क्षमा किया जाना बतलाती है। इस बात को मरडक पादरी "हिन्दु और ईसाई पूजा*" नामी पुस्तक में इस प्रकार स्वयं मानते हैं कि "हमने यह काम नहीं किये जिन को कि करना था, और हमने वह काम किये हैं जोकि हमें करने योग्य न थे, और हमारे में आरोग्यता नहीं रही। परंतु हे प्रभु तू हम पर दया कर। हम अत्यन्त पापी हैं। हे परमेश्वर तू उन को क्षमा करदे जो अपने पापों को मानते हैं"। इङ्गलेंड देश में बुद्धिमान लोग जब उक्त प्रकार की प्रार्थना को युक्ति शून्य और केवल पाठ मात्र ही अनुभव करने लगे तो उन्हीं ने ईसाई मत तथा उसके सिद्धान्तों का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। "चार्लस ब्रैडला" ने इङ्गलेण्ड में ईसाइयों के मत का कई पुस्तकों में खण्डन किया है। "चार्लसब्रैडला"† की सहयोगिनी "एनीबिसेण्ट" ने सन् १८८४ ई० में एक § पुस्तक लिखी

* cf. "Hindu and Christian worship" pp6.

† Charles Bradlaugh.

§ What is the Use of Prayer? by Mrs. Annie Besant.

थी जिस का नाम यह है कि " प्रार्थनाका क्या लाभ है " उसमें उसने ईसाइयों की पाठ रूपी प्रार्थना को सर्वथा निर्मूल सिद्ध किया है। उस में दर्शाया गया है कि ईसाइयों की:—(क) प्रार्थना का मूल इस बात के निश्चय पर है कि ईश्वर प्रार्थना से स्वभाव बदल देता है। ईसा साहब ने इस को इस प्रकार दर्शाया है कि मनुष्यों को सर्वदा प्रार्थना करते जाना चाहिये, थकना न चाहिये। दृष्टान्त यह दिया है कि एक नगर में एक न्यायाधीश था, जोकि न तो ईश्वर से भय करता था और नहीं मनुष्यों से प्रेम रखता था। उसी नगर में एक विधवा स्त्री रहती थी, जो उसके पास आन कर कहने लगी कि मेरे शत्रु का मुझे बदला (वैर) ले दे। परन्तु यह इस पर कभी ध्यान न देता, कुछ दिन पीछे अपने मन में कहने लगा कि यद्यपि मैं ईश्वर का भय नहीं रखता और न ही मनुष्य से मुझे स्नेह है तथापि इस लिये कि इस बुढ़िया ने मुझे तंग कर मारा है, मैं इसका बदला ले दूंगा, क्योंकि ऐसा न हो कि नित्य के आने से वह मुझे थकित कर दे।....... .... और क्या परमेश्वर अपने भक्त का बदला न ले देगा जो रात दिन उसको पुकारता है*॥ (ख) एक और स्थल पर ईसा साहब ने यह कहते हुए उक्त भाव को ही पुष्ट किया है " मैं तुम्हें कहता हूं कि यद्यपि वह उठकर उस को सहायता न देगा क्योंकि वह उसका मित्र है, तथापि उसके बार बार मांगने से तङ्ग आकर वह उठ कर

* Bible, Luke xviii, 1-7.

उसकी यथेष्ट सहायता करेगा—और इस लिये मैं तुम्हें कहता हूं कि मांगो और यह तुम्हें दिया जाएगा * ॥

(ग) एक और स्थल पर ऐसा खिखा है " तुम जो प्रभू को याद करते हो, चुप मत बैठे रहो, और प्रभू को विश्राम मत लेने दो, यहां तक कि वह युरोशल्म नगर को पृथिवी पर प्रशंसनीय न बना दे " ¶

पर एनीबिसेण्ट इस प्रकार शंका करती है कि " ईश्वर अन्यायकारी है, जोकि न तो कर्त्तव्य और नहीं सत्य पालन के लिये न्याय करता है, परन्तु इस लिये करता है कि वह तङ्ग न आजाए। "।

" ईश्वर असावधान उपराम नियन्ता है, जिस को कि (प्रार्थना द्वारा) तङ्ग करके अपने कार्य्य करने में लगाना पड़ता है, वह एक ज्ञानरहित पिता वा माता है, जिस से कि उसका नष्ट भ्रष्ट बच्चा चिर काल रो पीट कर जो चाहे सो कराले वास्तव में ईश्वर का मनुष्य से सम्बन्ध जताने वाला यह महा और सुन्दर विचार है ! " ॥

" यदि ईश्वर का स्वभाव प्रार्थना पलट सकती है, यदि मनुष्य इतनी शक्ति रखता है, कि ईश्वर को मनाले, तो ऐसा ईश्वर ज्ञान अथवा उत्तमत्ता में अवश्य न्यून होगा । प्रार्थना

* Bible, Luke xi, 5-13.

¶ Bible, Isaiah lxii, 6-7.

द्वारा प्रभू के मन को पलट देने की शिक्षा स्पष्ट बाईबल में दी गई है । परमेश्वर मूसा साहेब को इस प्रकार कहता है कि "मुझे अकेला छोड़ दो ताकि मेरा क्रोध उनके लिये पिघलाने वाली आग हो जाए, ताकि मैं उन को भस्म करदूं" । मूसा ऐसा करने में त्रुटि करता है, वह अपने परमेश्वर को शान्त करने और उस से तर्क करने का यत्न करता है, यह कहते हुए कि "प्रभू तेरा क्रोध पिघलाने वाली आग क्यों हो गया, मिश्र वाले तेरे विषय में क्या कहेंगे ? अपने अत्यन्त क्रोध को छोड़ दे, और अपने लोगों के प्रति जो तेरा यह पाप है, इस का पश्चाताप * कर" ईश्वर मनुष्य नहीं है कि वह पश्चाताप करे, और उस में बदलने का स्वभाव तो कहां, उसका लेश भी नहीं है। परंतु इस अवसर पर उसने "अपने पाप पर पश्चाताप किया" और अपने क्रोध को छोड़ दिया । अव निष्पक्ष हो कर सोचो कि क्या मूसा ने अपने प्रभू से ऐसा वर्ताव नहीं किया, जैसा कि तुम में से कोई एक ऐसे क्रोधित पुरुष से करे, जोकि सर्वप्रकार के उपद्रव मचाना चाहता हो"

"यद्यपि आज कल के ईसाई अपने ईश्वर से ऐसी खुल्लमखुल्ली और सरलता से बात चीत नहीं करते, जैसा कि मूसा ने अपने ईश्वर से की थी, तथापि जब वह उस की प्रार्थना करते हैं तो उस का निरादर करते हैं । क्योंकि ईसाई यह

* Bible, Ex. xxxii, 10-14.

अवश्य समझते होंगे कि ईश्वर को अपने कर्त्तव्य करने के लिये हमारी शिक्षा अथवा प्रेरणा की आवश्यकता होगी । उस पुरुष का घमण्ड जो अपने ईश्वर को ज्ञान अथवा कर्त्तव्य का बोधन कराना चाहे, ऐसा है जैसा कि एक मच्छर " न्यूटन * " को गणितविद्या सिखाए । यदि यह कहा जाए, कि प्रार्थना ईश्वर के स्वभाव को बदल नहीं सकती तो फिर यह निष्फल हुई । यदि ज्ञानी परमेश्वर सब से उत्तम कार्य्य कर रहा है यदि मङ्गलमय प्रभू विना शिक्षा के दया प्रवाहित कर रहा है, तो फिर प्रार्थनाकी क्या आवश्यकता है " ?

" यह बात स्पष्ट है कि बाईबल ने प्रतिज्ञा की है कि प्रार्थना का उत्तर मिलेगा । " मांगो और तुम्हें दिया जायेगा † " जो कुछ तुम पिता से मेरे नाम पर मांगोगे वह तुम्हें देगा " § यह प्रतिज्ञाएं कभी भी पूर्ण हुईं । मांगो और तुम्हें दिया जाएगा यह सत्य नहीं है । कितनी बेर पत्नि ने अपने पति की आयु के लिये प्रार्थना की, तो भी वह विधवा होगई ? कितनी बेर माता ने अपने पुत्र के लिये आयु मांगी और पुत्र खो बैठी । कितने हाहाकार मय शब्द डूबती हुई नौका से ईश्वर के पास गये, परन्तु जल ने उनके गले घूंटदिये । कितनी प्रार्थनाएं जलते हुए घरों से उठीं, परन्तु ज्वाला ने उन जिह्वाओं को जो कि एक

* Newton. † Bible, Matt. vii, 7.

§ Bible, John, xvi, 23.

बहरे परमेश्वर को चिल्ला रही थीं भस्म कर दिया। मांगो और तुम्हें दिया जायगा, क्या यह मनुष्य की निराश अवस्था का उपहास्य नहीं है। हमारे बड़े नगरों में भूखे होंठ, परम पिता से रोटी मांगते हैं। शून्य आकाश और शान्त वायु से यही उत्तर आता है कि जहां बैठे हो वहां ही मरजाओ "।

" इस कठिनाई का कभी कभी यह उत्तर दिया जाता है कि ईश्वर तो जानता है, कि हमारे लिये क्या सब से उत्तम है। जब यह बात है तो फिर प्रार्थना ही क्यों करते हो ? एक ज्ञानी और कल्याणकारी ईश्वर तुह्मारा न्याय, और तुह्मारा आप ही पालन कर देगा। अपने प्रभू से उपहास्य मत करो, और अपने आप को धोखा मत दो, यह बहाना करते हुए कि जब हम मांगेंगे तो हम को मिलजाएगा और न मिलने पर यह कहना कि विश्वास से जो हाथ फैलाए थे, वह इस लिये भरे नहीं कि ईश्वर जानता है कि सब से उत्तम क्या है ? "

सन् १८७२ ई० में जुलाई मास के एक * पत्र में " प्रोफैसरटिन्डल × " ने ईसाइयों की प्रार्थना की परीक्षा करने को लिखा था। उनका कथन था कि प्रार्थना की परीक्षा रोगी के रोग निवारण करने के लिये की जानी चाहिये, जैसा कि किसी औषधी की परीक्षा की जाती है, ताकि निश्चित हो जाए, कि रोग की निवृत्ति प्रार्थना से हो सकती है वा नहीं। पादरी

* Contemporary Review. × Professor Tyndall.

लोग " टिन्डल " के वचन पढ़ कर बहुत घबराये, क्योंकि बाईबल में लिखा हुआ था, कि " तुम में से जो रोगी हो उसको चाहिये कि पादरियों को बुलाए, ताकि वह उसकी रोगनिवृत्ति के लिये प्रार्थनाकरें, और प्रभू का नाम लेकर उस पर तेल छिड़कें और विश्वास करें कि प्रार्थना रोगी को बचा लेगी और प्रभू उस को जीता कर देगा * " ॥

" दो ईसाई जातियों को लीजिये, प्रत्येक की सेना विजय के लिये प्रार्थना करती है और जो मांगेगा उस को मिलेगा, परन्तु एक काल में दोनों युद्ध करने वाली सेनाओं को, ईश्वर भी विजय नहीं दे सकता। दो प्रकार की प्रार्थनाएं उड़ कर आकाश में गई, दो प्रकार की प्रार्थनाएं दयामय के सिंहासन पर पहुंच गई, ईश्वर ने दोनों को स्वीकार करने की (बाईबलमें) प्रतिज्ञा की हुई है। अब क्या किया किया जाए ? मैं एक उपाय बतलाती हूं। क्या तुम नहीं सोचते कि ईश्वर यह कहेगा कि मैंने दोनों से प्रतिज्ञा की हुई है, इस लिये मैं किसी की भी सहायता नहीं करूंगा, उनको (दोनों सेनाओंको) चाहिये कि आपस में भली प्रकार युद्ध करें " ॥

इङ्गलेण्ड में पारलियामेण्ट (राज्यसभा) के निमित्त प्रार्थना की जाती है। पोतों (जहाज़ों) के लिये भी प्रार्थना पादरी करते हैं, परन्तु ईसाई लोग उत्तम प्रकार से बने हुए पोत पर ही

* Bible. V. 14, 15.

चढ़ते हैं, न कि उस पर जोकि टूटा फूटा हो, चाहे उसके निमित्त पादरी ने कैसी भी लच्छेदार प्रार्थना क्यों न की हो ? प्रार्थना बादलों को लाने तथा हटाने के लिये भी की जाती है ! १८८३ ई० में जब कि अनाज वर्षा से भीग गया था, तो वहां धूप के लिये प्रार्थना की गई । चाहो अनाज कितना भी भीग जाए, परन्तु कोई पादरी अब यह प्रार्थना नहीं करता कि सूर्य्य सवेरे चढ़े और देरी से अस्त हुआ करे । परन्तु जब बाईबल को भली प्रकार मानते थे तब ऐसी भी प्रार्थना कर चुके हैं, कि हे ! सूर्य्य तू चुप चाप खड़ा होजा, और तब सूर्य्य आकाश के मध्य में खड़ा हो गया और दिन भर * नीचे न उतरा । यदि कोई मनुष्य इस प्रकार सूर्य्य को आज खड़ा करने के लिये कहे, तो लोग उस को पागलगृह में भेजने का यत्न करेंगे, परन्तु वह अपने को पागल नहीं मानते जो ऋतु परिवर्तन के लिये प्रार्थना करते हैं । मनुष्य आज सूर्य्य को नियत समय मे पूर्व चढ़ाने के लिये प्रार्थना नहीं करते किन्तु बादलों को लाने अथवा हटाने के लिये करते हैं । यह भी अज्ञान का ही फल है । चमत्कार और करामात अज्ञान की ही सन्तान हैं । " शक़ुल क़मर " चांद का टूटना आदि चमत्कार जो मुसलमानों के कुरान में वर्णन किये गये हैं, इसी प्रकार अज्ञान की बातें जाननी चाहियें । सृष्टि के नियम अखण्ड अटल हैं, कोई भी ईसाई अथवा मुसलमान पाठमयी प्रार्थना अथवा किसी प्रकार से ईश्वरीय नियमों को

* Bible Josh, X, 12, 13.

बदल नहीं सकता। ईसाइयों की प्रार्थना जो सिखाती है, कि ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव, परिणाम को प्राप्त हो कर खण्डित हो जाते हैं निर्मूल है। यदि ईसाइयों को सच्ची " तसलीस " अर्थात् ईश्वर, जीव, और प्रकृति के गुण, कर्म, स्वभाव का ज्ञान होता तो कभी ऐसी प्रार्थना का, जो कि पाठ मात्र से सिद्धि बतलाती है नाम न लेते ॥

जब पिछले समय में हरिवर्ष में रोग फैलते थे, तो उन को दूर करने के लिये लोग पाठ करना जिस को वह प्रार्थना कहते हैं आरम्भ कर देते थे। नगरों में बाजे गाजे बजा कर किसी सन्त का वस्त्र लोगों को स्पर्श कराते थे। पौराणिक हिन्दू लोग भी इसी प्रकार अविद्या वश हो कर भारतवर्ष में आज पर्य्यन्त कर रहे हैं। कहते हैं कि एक समय १८५३ ई० के लगभग जब इङ्गलेण्ड में विसूचिका (हैज़ा) फैल गया, तो " एडनबरा " नगर के पादरी ने " लार्ड पामरस्टन " को पत्र भेजा कि इङ्गलेण्ड से हैज़ा भगाने के लिये प्रार्थना करने का एक दिन नियत कर दीजिये। " लार्ड पामरस्टन * " ने उत्तर में यह कहा कि अपने परनालों (मोरियों) का प्रबन्ध करो ॥

अपनी पुस्तक के अन्त में एनीबिसेण्ट इस विषय में कहती है कि " मैं प्रार्थना का नाश करना चाहती हूं, न केवल इस लिये कि यह छल है, किन्तु उन्नति मार्ग में एक विघ्न है।

* Lord Palmerston.

पृथिवी पर उन्नति के साधन विना विद्या और कर्म्म के कोई नहीं हैं। सृष्टि का पढ़ना इस लिये कि यह क्या है, और काम करना जिस में कि विद्या मनुष्यों के सुख की वृद्धि के लिये उपयोग में लाई जाये। अनेक वर्ष पर्य्यन्त मनुष्यों ने प्रभू से प्रार्थना की कि निर्धनता, दुःख और पाप दूर हों परन्तु निर्धनता, दुःख और पाप सर्वत्र पायाजाता है । मनुष्य ही पृथिवी को उत्तम बनाने के लिये वह कर्म करेंगे, जोकि प्रार्थना नहीं करसकी" ॥

पाठमयीप्रार्थना का एनीबिसेण्ट खंडन करती हुई, हमें अपनी पुस्तक के अन्त में जाकर सच्ची उन्नति के दो उपाय एक ज्ञान और दूसरा कर्म बतलाती है। उस का कथन है कि सृष्टि को पढ़ो इस लिये कि यह क्या है, क्या सचमुच वैदिक स्तुति के भाव को प्रकट नहीं कर रहा ? वैदिक स्तुति जैसा कि हम आरम्भ ही में सिद्ध कर चुके हैं, सृष्टि के पदार्थों तथा ईश्वर की विद्या सिखलाती है। बिसेण्ट इस स्तुति के एक अंश का हमें उपदेश करती है। फिर उसका यह कथन कि वह काम करो जिस में कि विद्या सफल होसके, वास्तव में वैदिक प्रार्थना अथवा कर्म की महिमा जनाता है।

देखिये कि नास्तिक एनीबिसेण्ट ने वैदिक स्तुति और प्रार्थना अर्थात् ज्ञान, और कर्म को अपने शब्दों में मनुष्य उन्नति का साधन बतलाया है। वह नास्तिक होने से उन्नति धाम

की प्राप्ति अर्थात् उपासना का वर्णन न कर सकी, जिस उन्नति धाम के पूर्वोक्त ज्ञान, कर्म, साधन हैं। उस उपासना रूपी उन्नति धाम का हम वर्णन पूर्व कर आये हैं॥

पाताल * देश में भी पाठमयी प्रार्थना का खण्डन हो चुका।

पाताल निवासी एन्डरोजैकसनडेवस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक विशेष सहायता ‡ " नामी में यह बात विस्तार पूर्वक सिद्ध कर दिखाई है, कि ईश्वर कभी अपने नियमों को नहीं खण्डित करता और ईसाइयों की प्रार्थना, जिस का आधार इस पर है कि मनुष्य अपने कर्त्ता के स्वभाव को पाठ द्वारा बदल सकता है निर्मूल है। उस में लिखा है कि:—

(१) एक पागल (उन्मत्त) पुरुष कई वर्षों से उन्मत्त था, वह एक समय एक पहाड़ी से गिरता हुआ रुक गया। इस प्रकार गिरने से उस का रोग जाता रहा, और जब मित्रों ने उस को इस भयंकर दशा से सुरक्षित पाया तो चकित हुए, कि वह चंगा भला क्योंकर हो गया? इस अचंभे को देख कर ईसाई लोग कहने लगे कि ईश्वर ने आप हाथ पसार कर उस की सहायता की है। और ईश्वरीय विशेष सहायता का यह चमत्कार है॥

---

* पाताल = America. हरिवर्ष = Europe.

‡ The Philosophy of Special Providences. By A. J. Davis.

इस का खण्डन "डेवस" इस प्रकार करते हैं कि वह गिरने वाला एक पुरुषार्थी विद्यार्थी था और नियम तथा मर्य्यादा रहित पढ़ने से उस के शीर्ष (कपाल) में एक प्रकार का अर्द्ध गठिया हो गया था, जिस को वैद्य लोग कपालगठिया * कहते हैं। गिरते हुए रुक जाने से उसके कपाल में ऐसी गति व्याप्त हो गई कि उसका गठिया तुरन्त छूट गया। वैद्य लोग इस प्रकार के बहुत दृष्टांत जानते हैं। कई लोग शोक समाचार सुनते ही मर जाते और कई आनन्द समाचार से बल धारण कर लेते हैं। यह सब बातें विना कारण अर्थात् अकस्मात् नहीं हो जातीं। इन को ईसाइयों की तरह विशेष सहायता के चमत्कार मानना सत्य नहीं है॥

(२) समुद्र के तट पर एक सुन्दर ग्राम था, जिसके रहने वाले कृषि विद्या को जानते थे। एक समय वहां घटाच्छादित हुई, और भूकंम्प के होते ही भूमि फट गई। निकट के कई ग्राम तथा दो बड़े नगर खण्ड खण्ड होकर भस्मिभूत हो गये, परन्तु यह सुन्दर ग्राम बच रहा। ईसाई कहने लगे कि यह ईश्वर के न्याय का चमत्कार था॥

ईसाइयों के इस वाक्य का खण्डन डेवस साहेब इस प्रकार करते हैं कि यह ग्राम इस वास्ते बच रहा कि जिस भूमि पर उपस्थित था, उस भूमि का गर्भ, निकट की भूमि सरीखा फट

* Dementia or Incoherence.

जाने वाला न था। *

(३) एक बड़ी धनवान स्त्री अत्यन्त पीड़ा और क्लेश सहती हुई मरी, वैद्य उस की रोग निवृत्ति न कर सके, पादरियों ने भी प्रार्थनाएं कीं, परन्तु कुछ न हुआ, इस पर ईसाई लोग कहने लगे कि ईश्वर के घर का किसने अन्त पाया है॥

इस पर वह ग्रंथकर्त्ता कहता है, कि वह स्त्री धनवान् होने के कारण, भोजनादि की मर्य्यादा को पालन नहीं करती थी और भोग विलास में लम्पट होने तथा व्यायाम आदि न करने से दुःख का रूप बन गई थी, और जो कुकर्म रूपी बीज उसने बोए थे उन का फल भोगती रही॥

इसी पुस्तक के पृ० ४२ पर डेवस साहेब का कथन है कि **निर्धनता, पाप, पराधीनता,** और **रोग निवृत्ति** के लिये ईश्वर से प्रार्थना करना ठीक नहीं है, क्योंकि यह सब विकार मनुष्य-कृत हैं। यह दुःख मनुष्य ने ही उत्पन्न किये हैं, मनुष्य ही इन को नाश करेगा। फिर इसी विषय में ऐसा कथन करते हैं, कि एक मनुष्य राजा के ऐश्वर्य के लिये प्रार्थना करे और दूसरा उस एकले एक राजा के नाश तथा राज्य सभा की स्थिति के लिये, तो दोनों में से किसकी प्रार्थना सफल होगी? एक पुण्यात्मा वर्षा वृद्धि के लिये प्रार्थना करे, और दूसरा वैसा ही पुण्यात्मा वर्षा

* भूमियां नाना प्रकार की कोमल और कठोर होती हैं, भूगर्भविद्या ने इस को भलिभांति वर्णन किया है॥

के न होने की, तो किसकी प्रार्थना स्वीकार होगी ? दोनों सत्य हृदय से प्रार्थना कर रहे हैं, यदि एक की स्वीकार हो गई, तो दूसरे की हानि और दूसरे की मानी गई तो पहले की § हानि होगी। एक और † स्थल पर वर्णन है, कि यदि तुम भोजन पचाने, आकर्षण करने, मैथुन, गमन आदिके नियमों का उलंघन करोगे, तो तुम्हें अपने कर्म का फल अवश्य मिलेगा, कोई भी अपराध क्षमा नहीं हो सकेगा ॥

ब्रह्मसामाजिकों की आत्मिक प्रार्थना ।



हम देखते हैं कि ईसाई लोग और ब्रह्मो भाई वा प्रार्थना सामाजिक, ईश्वर को एक माता से उपमा देते हुए, प्रार्थना करते हैं, और इस बात पर ज़ोर देते हैं, कि जैसे माता छोटे मलीन बालक को प्रेम से गोद में लेकर स्तन पिला देती है, उसी प्रकार " हे ? जगत जननी तू हमारी मलीनता का ध्यान न करके हमको अपनी गोद में लेले " ! यह दृष्टान्त उनका ईश्वर विषय में नहीं घट सकता। हिन्दू लोग ईश्वर को अपने जैसा कल्पना करके उसकी मूर्त्ति बना उसको स्नान आदि कराते हैं। वैसे ही ईसाई अथवा ब्रह्मो लोग ईश्वर को अपने जैसा कल्पना कर लेते हैं। यह समझते हैं कि जैसे

§ The Phiosophy of Special Providences, page 55.

† Page 66.

हम अपराधियों * के अपराध क्षमा करते हैं वैसे ही प्रभु हमारे कर देगा। परन्तु यह उनकी भूल है। संसार की तुच्छ अल्पज्ञ माता मोह वश होकर बालक को गोद में ले सकती है, परन्तु ईश्वर अखण्ड, एकरस अज्ञान रूपी मोह से सर्वथा रहित है, वह अपवित्र, मलीन जीव के पाप क्षमा नहीं कर सकता, और जो पुरुष शुभ कर्म द्वारा शुद्ध नहीं होता, उस को ईश्वर की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। ईश्वर की दया को ज्ञानरहित माता के मोह रूपी अन्धे प्रेम से उपमा देना सत्य नहीं है। यदि यह सत्य है कि ईश्वर माता के तुल्य हमको क्षमा करके सहायता देता है, तो क्यों नहीं कोई पुरुष प्रार्थना मात्र से योगी बन गया। ऐसी प्रार्थना करने वाले समझते हैं कि दया अथवा प्रेम, न्याय को उल्लंघन कर लेताहै जो कि सत्य नहीं है। दया का साधन न्याय है। जगत् में सच्ची दयालु माता वही है, जो अपने बच्चे को मलीन कर्म करने पर दण्ड दे और शुभ कर्म करने पर लाड़ करे। जिन माताओं के लड़के गालियां देना अधिक जानते हैं, उस का हेतु यही है कि मूर्ख माताएं मोह वश हो न्याय को तज कर अपनी सन्तान को गाली देने से रोकना नहीं चाहतीं। बालक चोरी करना क्यों सीख जाते है? इस लिये कि उनकी माताएं उनको इन कुकर्मों पर दण्ड नहीं देतीं। जो माता इस प्रकार सन्तान के अपराध क्षमा करती हुई

* Compare "Lord's Prayer":—"And forgive us our trespasses as we forgive them that trespass against us."

यह कहे कि मैं सन्तान से प्रेम करती हूं, वह मूर्ख है । ईश्वर दयालु होने पर क्षमा नहीं करता, किन्तु न्याय रूपी दण्ड साधन द्वारा अपनी दया को (जो दया कि हम को उन्नत करना चाहती है) सिद्ध कर रहा है। दया अथवा प्रेम का साधन न्याय है। इस लिये जो पुरुष छत्त पर जाना चाहे उस को सीढ़ी रूपी साधन की आवष्यकता है वैसे ही जो दया को सिद्ध करना चाहे उसको न्यायाचरण साधन बनाना चाहिये ॥

शास्त्रों में इसी न्यायाचरण* को धर्म्माचरण का नाम दिया है। न्याय का पर्यायवाची धर्म है। अपराध क्षमा करने से किसी का सुधार नहीं किन्तु विगाड़ होता है। सुधार का मूल सत्य धर्म है। इसी वास्ते जो मनुष्यों का सुधार करना चाहें उन को धर्म का उपदेश करना चाहिये । गिरी हुई "कौम" के उठाने का एक उपाय यही है कि उस "कौम" में धार्मिक पुरुषार्थ की नींव डाली जाए, विना धर्म्मानुकूल कर्मों के किसी कौम अथवा देश का सुधार नहीं हो सकता । जो लोग समझते हैं कि अन्याय से किसी को दलन कर लो, ईश्वर तो सो रहा है, वह स्थूलदर्शी है। एक न्यून न्याय युक्त कौम को अधिक न्याय युक्त कौम ईश्वर के नियमानुकूल अपने

---

* Compare "न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः—"; तथा धर्म्म जो सत्य न्याय का आचरण करना है" देखो (पञ्चमहायज्ञ विधि पृष्ठ ३२) ॥

आधीन रखती है। "कारलायल" का कथन सत्य है कि यदि 'फ्रान्स' देश में घोर महाभारत न होता तो मैं कभी न मानता कि न्यायकारी ईश्वर मनुष्यों से सम्बन्ध रखने वाला भी है। क्योंकि उस समय फ्रान्स देश पाप से पीड़ित हो रहा था, और बलवान निर्बलों को अन्याय से भस्म कर रहे थे। कदाचित् इस बात के अनुभव करने से ही "कारलायल" ने यह कहा है कि "अपना काम करते जाओ, और फल की चिन्ता न करो। कर्म्मों के फल देने की चिन्ता तुझ से एक महान् शक्ति को लग रही है"। कारलायल ने ईश्वर को कर्मों का फल प्रदाता माना है न कि कर्मों के शुभाशुभ फल को ब्रह्मुओं की तरह क्षमा करने वाला बतलाया है। क्या "कारलायल" के उक्त वचन * इस वैदिक भाव को पुष्ट नहीं कर रहे कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में ईश्वरीय व्यवस्था अनुसार परतन्त्र है॥

महात्मा बाबूकेशवचन्द्रसेन § "धर्मविषयकप्रस्तावप्रथमभाग" (पृ० १३३ से १३५ तक) में शारीरिक अथवा भौतिक सिद्धि के लिये पाठमयीप्रार्थना की सफलता नहीं मानते। उनके लेख से विदित है कि पाठमयीप्रार्थना, चाहो कितने भी सत्य हृदय से शारीरिक अथवा भौतिक लाभ के लिये की जाए, कभी सफल न

* "Do thou thy work and care not for results; the results are the care of One greater than thou." (Carlyle).

§ (Theological and Ethical Essays Part I Page 133, 135) By Mahatma Keshubchander Sen.

होगी। वह कहते हैं कि वर्षा, अन्न वृद्धि, आरोग्यता, आयु और शारीरिक सुख के लिये पाठमयीप्रार्थना करना निष्फल है। उन का कथन है कि शारीरिक और भौतिक लाभ सम्बन्धी वही प्रार्थना सफल हो सकती है, जिस में कि उस के करने वाले को उस के सफल होने का पहले ही से पूर्ण निश्चय हो। यदि प्रार्थना करने वाले के हृदय में थोड़ी सी भी शंका होगी तो भी उस की भौतिक प्रार्थना सफल न होगी, उन के वचनानुसार जो वर्षा के लिये प्रार्थना करे उस को तब करनी चाहिये, जब वह निश्चित कह सकता हो कि वर्षा अवश्य होगी। ऐसे निश्चय पूर्वक कोई भौतिक लाभ के लिये प्रार्थना कर नहीं सकता इस लिये उन के लेखानुसार शारीरिक लाभ के लिये पाठमयीप्रार्थना सर्वथा निष्फल ही है॥

यहां तक तो महात्मा केशवचंद्रसेनजी का सिद्धान्त कि पाठमयीप्रार्थना से शारीरिक लाभ प्राप्त नहीं हो सकते, सत्य है, परन्तु वह आगे इसी लेख में आध्यात्मिक सिद्धि के लिये पाठमयी प्रार्थना की सफलता मान गये। वह लिखते हैं, कि आत्मिक पाठमयीप्रार्थना निश्चित स्वीकृत होती हैं। युक्ति में केवल बाईबल का वाक्य अनुकरण करते हैं कि मांगो और दिया जाएगा"। बाईबल का यह वाक्य उन्हों ने आत्मिक पाठ मयी प्रार्थना की सफलता के लिये मानो प्रमाण जान कर लिखा है। एक भी युक्ति उन्हों ने इस स्थान पर नहीं दी। फिर लिखते

हैं कि " एक भी पाठमयी प्रार्थना मुक्ति के लिये कभी अस्वीकार नहीं हुई और न कभी आगे होगी, परन्तु लाखों प्रार्थनाएं, खेती, ऋतु, आरोग्यता, और धन के लिये अस्वीकार हो चुकी हैं " ॥

इस लेख से विदित है, कि महात्मा केशवचंद्रजी शारीरिक पाठमयी प्रार्थना को निष्फल और आत्मिक पाठमयी प्रार्थना को सफल मानते हैं। हमें यह भी समझमें नहीं आता कि मुक्ति को महात्माजी ने क्या माना हुआ है जोकि केवल पाठमात्र से हिन्दुओं की तरह अवश्य मिल जाती है। ऐसीबातों का खण्डन एनीबिसेंट ने अपनी पुस्तक * (मेरामार्ग नास्तिकपन को) में ऐसे किया है:—

" वहुत से आर्जव § हृदय के लोग इस बात को मानते हुए भी कि पाठमयी प्रार्थना, वर्षा और ऋतु के लिये न करनी चाहिये, इस बात पर ज़ोर देते हैं कि आत्मिक लाभ के लिये पाठमयी प्रार्थना होनी चाहिये। क्या यह विचार भी अविद्या जन्य नहीं है ? जब लोग भौतिक नियमों को नहीं जानते थे, तब वह समझतेथे कि शारीरिक लाभ पाठमयी प्रार्थना से मिल जाएंगे। अब लोग आत्मिक नियम नहीं जानते, इस लिये वह समझते हैं कि आत्मिक लाभ पाठमयी प्रार्थना से मिल जाएंगे।

* " My path to Atheism " by Annie Besant. pp. 164.
§ इस को उर्दू में संजीदा कहते हैं।

इन दोनों अवस्थाओं में पाठमयी प्रार्थना का हेतु अविद्या ही है। जो भुजा कि ज्वर से निर्बल होगई हैं उनको जब पाठमयी प्रार्थना बल नहीं दे सकती तो यह आशा करना कि पाठमयी प्रार्थना आत्मा को बल दे सकती है सत्य नहीं है। धीरे धीरे उगना और बढ़ना सृष्टि का नियम है, छलांगें मारना सम्भव नहीं। कोई भी पाठमयी प्रार्थना उस आत्मिक बल को प्राप्त नहीं करासकती, जोकि नित्य के प्रयत्न और सन्तोषमय शुभ कर्मों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है" ॥

"धर्म विषयक * प्रस्ताव द्वितीयभाग" (पृ० ३०,४५) में महात्मा केशव चन्द्रसेन इस विषय में विशेष लिखते हुए इस बात को दर्शाते हैं, कि न्यूनता के अनुभव करने पर ही प्रार्थना उत्पन्न होती है और प्रार्थना को वह आत्मा की भूख और इच्छा बतलाते हैं। वह लिखते हैं कि प्रार्थना निर्बल को बलवान, कायर, को वीर, निराश को आशावान, अधर्मी को धर्मात्मा, और मूर्ख को बुद्धिमान बना देती है। हमें महात्माजी के इन उत्तम वचनों के पढ़ने से प्रसन्नता है, कि उन्हों ने प्रार्थना के सत्य अर्थ आत्मा की भूख अथवा इच्छा आदि जान लिये। महात्माजी के द्वितीय भाग के लेख से विदित होता है, कि वह प्रार्थना को ईसाइयों की तरह केवल शब्द ही नहीं मानते, परन्तु आगे चल कर हमें

* Theological and Ethical Essay part ii, by Keshub Chander Sen, page 30—45.

कैसा आश्चर्य्य होता है, कि इस **आत्मिक-इच्छा** रूपी प्रार्थना की पूर्त्ति का साधन वह कर्म अथवा पुरुषार्थ नहीं बतलाते, किन्तु पाठ करना ही इस की सफलता का उपाय दर्शाते हैं। यदि वह, कर्म्म को इच्छा की सफलता का साधन बतलाते तो फिर ब्रह्मी और वैदिक सच्ची प्रार्थना में भेद न रहता। परन्तु उन का यह कथन कि " किस प्रेम मे हमारा दयालु पिता हमारी प्रार्थनाएं सुनता और हमारी आत्मिक न्यूनता पूर्ण करता है " जतला रहा है कि वह इच्छा की पूर्त्ति इच्छा के पाठ से ही मानते हैं। क्या रोटी की प्राप्ति रोटी के नाम लेने से हो सकती है ? उन्हों ने जो ऊपर लिखा है कि प्रार्थना निर्बल को बलवान और कायर को वीर बनासकती है, इस को हम इस प्रकार मानते हैं, कि निर्बल अपनी निर्बलता अनुभव करने पर उन साधनों को काम में लाए और पुरुषार्थ द्वारा अपनी न्यूनता पूर्ण करे, तो वह बलावान हो सकता है। हम प्रार्थना को भूख और साथ ही भूख की निवृत्ति कर्म द्वारा मानते हैं। हम भौतिक वा शारीरिक तथा आत्मिक प्रार्थना (इच्छा) की सफलता कर्म द्वारा ही मानते हैं, जैसा कि विस्तार पूर्वक पूर्व ही लिख आये हैं।

हम चकित हैं कि ब्रह्मो लोग, प्रार्थना को आत्मिक भूख दर्शाते हुए, उस की पूर्त्ति कर्म से क्यों नही मानते ? क्या ब्रह्मो भाई समझते हैं कि तृषा लगने पर जल का पाठ करना हमारी इच्छा की पूर्त्ति कर सकेगा महात्माजी ने इसी पुस्तक में जहां शान्ति आदि गुणों की प्राप्ति प्रार्थना से दिखाई है, वहां पर भी

यही शंका हो सकती है, कि पाठ मात्र से शान्ति आदि की प्राप्ति क्योंकर हो सकती है ? महात्मा जी के लेख को भली प्रकार पढ़ने से विदित होता है, कि जो फल उपासना के हैं वह भी उन्हों ने प्रार्थना के ही लिख दिये । यदि वह बाइबल के प्रेअर* शब्द का जिस के अर्थ पाठमयी प्रार्थना के हैं पीछा छोड़ देते, तो ऐसी न्यूनता काहे को उन के लेख में रह जाती ?

हमें ईसाई प्रोफैसर बलेकी के निम्नलिखित वचन आशा दिला रहे हैं, कि वह दिन दूर नहीं जब कि शब्दों से सिद्धि बतलाने वाले ईसाई, विद्वान् होने पर वैदिक प्रार्थना की ओर उस के महत्त्व को अनुभव करते हुए आयें ॥

" स्वात्मोन्नति † " नामी पुस्तक (पृ० ८९) में ईसाई प्रोफैसर जान स्टूआर्ट बलेकी इसी विषय को " आत्मिक निज समालोचना × " का नाम देकर इस प्रकार लिखते हैं कि " यह विद्या नहीं किन्तु **संकल्प** § है जो कि क्रियामान शक्ति है, और संकल्प रूपी पक्षी का पर, प्रार्थना है । जो आत्मा संकल्प धारण नहीं करता वह रींगता है, उड़ नहीं सकता । हम इस लिये प्रार्थना नहीं करते कि ईश्वरीय आज्ञा को बदल दें परन्तु हमारी मानुषी इच्छा, ईश्वरीय इच्छा के अनुसार चलना सीख ले, मैं

---

* पाठमयी प्रार्थना or Prayer.

† Self Culture by John Stuart Blackie page 89.

× Moral Self Review.

§ He uses " aspiration. "

निस्सन्देह नियत किये हुए वचनों के पाठ करने का कथन नहीं कर रहा " ॥

ईसाई लोगों को अपने ईसाई भाई के इन वचनों पर ध्यान देना चाहिये। कहां तो ईसाई प्रार्थना थी कि हमारे अपराध क्षमा कर और कहां "वलेकी" के यह वचन कि हम इस लिये प्रार्थना नहीं करते कि ईश्वरीय आज्ञा को बदल दें। कहां तो ईसाई प्रार्थना का अर्थ शब्दोच्चारण था और कहां "वलेकी" का लिखना कि प्रार्थना **संकल्प** का धारण करना है? कहां तो प्रार्थना करने वाले हिलना भी नहीं चाहते थे और कहां यह अलंकृत वचन कि संकल्प आत्मा को उड़ा सकता है। यदि इस प्रकार ईसाई भाई सोचना आरम्भ कर दें तो अवश्य उनको वैदिक सिद्धान्त स्वीकार करने पड़ेंगे ॥

* पादरी "डफ़" को राजा राममोहनराय ने कहा था कि बाईबल "धर्म्म और सुनीति की अनुपम पुस्तक है"; राजा राममोहन सन्ध्या के महत्व को न जानता हुआ बाईबल की पाठमयी प्रार्थना की प्रशंसा करता था। उस के एक उर्दु जीवनचरित्र में लिखा है कि उस ने वेद, क़ुरान, और बौद्ध लोगों की त्रैपटिका पढ़े, परन्तु उस को किसी स्थान में ऐसी संक्षिप्त और सारगर्भित प्रार्थना नहीं मिली जैसी कि वह है जिस को कि ईसाई लोग † प्रभू की प्रार्थना करते हैं ॥

* Duff.

† रोज़ की रोटी दे, हमारे अपराध क्षमा कर, हम को पाप में न डाल इत्यादि प्रभू की प्रार्थना कहलाती है।

यदि राजा राममोहनरायजी पूर्ण रीति से अर्थ सहित वेद पढ़े हुए होते तो कदाचित् ऐसा वचन न निकालते। विदित होता है कि उन्हों ने वेद के सायन भाष्य को देखा होगा नहीं तो काहे को ऐसे भ्रम में पड़ते॥

आर्थरशोपनहार जिस को विद्याभण्डार की पदवी वर्तमान पश्चिमी विद्वान दे रहे हैं वह अपनी * पुस्तक (सुनीति का मूल) में इस प्रकार आर्य्य प्रार्थना की प्रशंसा कर रहा है।

" प्राचीन हिन्दू लोग सभा को विसर्जन करने पर जो **शान्ति,** शब्द का प्राणी मात्र के लिये उच्चारण करते थे, मैं उस से अधिक उत्तम प्रार्थना कोई नहीं जानता " § ॥

स्वतंत्र पुरुषों को बन्धनों से क्या ?



ज कल यदि किसी भाई से कहें कि संध्या किया करो, तो वह हंस कर कह देता है कि हम स्वतंत्र हैं हमें बन्धनों से क्या प्रयोजन ? हम चाहते हैं कि स्वतन्त्रता के सच्चे अर्थ समझ लिये जाएं, ताकि इस मनोहर शब्द के कहने वाले सज्जनों को विचार का अवसर मिल सके॥

---

* Das Fundament der Moral or The Foundation of Morality.

§ Says Arthur Schopenhauer " I know no more beautiful Prayer than that which the Hindus of old used in closing their public spectacles. They said: May all that have life be delivered from suffering. "

यदि मनुष्य जाति सृष्टि नियमों का खण्डन करना चाहे अथवा उन के अनकूल न चले तो ऐसा कर नहीं सकती। कोई भी मनुष्य कहे कि मैं आंखों से सुनूं और कानों से देखूं तो वह ऐसा कर नहीं सकता। सृष्टि की धारा परोपकार रूपी मार्ग में वह रही है, कोई भी इस धारा के विपरीत तैर नहीं सकता। जो स्वार्थ वश हो जाता है वह कुछ काल पशु, वृक्ष आदि योनियों में शुद्धि के लिये फैंका जाता है और ईश्वरीय परोपकार रूपी इच्छा के विरुद्ध चलने का दण्ड पाता है। फिर शुद्ध हो कर उस को अवसर है कि अपने आप को ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल चलाता हुआ, सुख का भागी बना सके। मनुष्य का कल्याण वास्तव में ईश्वरीय नियमों के अनुकूल चलने और दुःख उन के प्रतिकूल चलने में है। सृष्टि नियमों की आज्ञा शिर माथे पर धरो इस से उत्तम कोई शिक्षा आज कल पश्चिमी ज्ञान नहीं दे रहा।

अब प्रश्न यह है कि ईश्वरीय इच्छा अथवा सृष्टि नियमों के अनुकूल चलने के साधन क्या हैं? किसी मनुष्य के अनुकूल वर्ताव करने के लिये हमें उस मनुष्य के गुण, कर्म, को प्रथम जानना आवश्यक है और फिर हम यत्न करके अपना पुरुषार्थ उस पुरुषकी इच्छा अनुकूल लगाते हुए यह कह सकते हैं, कि हम उसके अनुकूल चल रहे हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल चलने के लिये यह आवश्यक है, कि हम स्तुति (ज्ञान) द्वारा उस की इच्छा को जान लें और फिर प्रार्थना (कर्म) द्वारा

यत्न करके उसकी इच्छा को जीवन में धारण करके यह कह सकें कि ईश्वर मेरी नहीं किन्तु " तेरी इच्छा पूर्ण हो "। जब यह बात है तो कोई शंका कर सकता है कि जीव स्वतंत्र तो न हुआ, क्योंकि स्वतंत्र तो तब मानते जब यह जो चाहे सो कर सके अथवा कुछ भी न करे। इसका उत्तर यह है कि शुभ, अशुभ इन में से जो चाहे यह कर सकता है परन्तु यह कहना कि कुछ भी न करे जड़ पत्थर हो जाए, हो नहीं सकता। इच्छा अनुसार कर्म करने के सामर्थ्य से ही हमारा नाम स्वतंत्र है! स्वतंत्र होने का यह अर्थ कदापि कोई नहीं सिद्ध कर सकता कि हम कुछ भी न करें। जो कर्म करना नहीं चाहता वह जड़ है न कि स्वतंत्र। इस लिये जब कर्म ही करना है तो शुभ कर्म करने से सच्चे स्वतंत्र क्यों न कहलाएं? क्या पाताल निवासी स्वतंत्र होने पर अपनी बनाई हुई व्यवस्था अनुसार नहीं चलते? इस लिये ब्रह्मयज्ञ आदि शुभ कर्म करते हुए हम सच्चे स्वतंत्र कहला सकते हैं अन्यथा नहीं।

थियासोफिकल सभा के मुख्यों का उपदेश।

मैडम बलेवटस्की की अङ्गरेज़ी पुस्तक के उर्दू उल्था " क्लीद थिआसोफी " के पृष्ठ ३७ पर प्रार्थना का ऐसा वर्णन है॥

* " (प्रश्न) क्या और भी किसी प्रकार की प्रार्थना है?

* Key to Theosophy. By H. P. Blavatsky.

(उत्तर) निस्सन्देह उस प्रार्थना को मानसिक प्रार्थना अर्थात् अन्तरीय भक्ति किन्तु मानसिक शक्ति कहते हैं। (प्र०) वह प्रार्थना किसकी है? (उ०) वह प्रार्थना उस अकथनीय ईश्वर की है कि जिसका सब पसारा है। (प्र०) क्या वह उस ईश्वर से पृथक् है कि जिस को साधारण लोग ईश्वर कहते हैं? (उ०) हां वह ब्रह्माण्ड से पृथक् ईश्वर नहीं, क्योंकि यदि पृथक् हो तो वह ईश्वर सीमा वाला होजाता है। वह असीम है जो मनुष्य में भी स्थित है और पृथक् नहीं अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है वह मनुष्य शरीर अथवा लघु लोक में है (प्र०) मानो आप के विचार में मनुष्य भी एक परमेश्वर है? (उ०) एक परमेश्वर नहीं, परमेश्वर ही कहो, क्योंकि जीवात्मा ही परमेश्वर रूपी है, और उसी को हम परमेश्वर जानते हैं और जब कि हम ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं तो उसकी सत्ता अर्थात् प्रादुर्भाव जो मनुष्य शरीर में जीवात्मा के स्वरूप में प्रकाशित है, उसी को ईश्वर क्यों न माना जावे........इस लिये यह नहीं कहना चाहिये कि वह जीवात्मा से पृथक् है अर्थात् मनुष्य की प्रार्थना सुन सकता है। वा उस असीम सत्ता से पृथक् है कि जिसकावह अंश है क्योंकि वास्तव में सब एक ही है, प्रार्थना करने वाला और प्रार्थना सुनने वाला। यदि दोनों पृथक् पृथक् हों तब तो प्रार्थना करने की आवश्यकता है। जब मनुष्य में जौनसी वस्तु प्रार्थना करने वाली है और वही वस्तु सुनने वाली है तो फिर प्रार्थना की

अवश्यकता क्या रही ? हमारी प्रार्थना वास्तव में एक गुप्त विधि है कि जिस रीति से ससीम भाव और इच्छाएं जो कि स्वयं अर्थात् अपनी साधारण दशा में उस असीम, अकथनीय आत्मा-रूपी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकती हैं उन को अभ्यास द्वारा चेतन शक्ति बना देना, इस का नाम प्रार्थना है " ॥

उक्त लेख से प्रार्थना विषय में मैडमजी का उपदेश प्रकट हो रहा है। " थियासोफिस्ट " लोग प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं मानते, क्योंकि मैडमजी के कथानानुसार " जौनसी वस्तु प्रार्थना करने वाली है और वही वस्तु सुनने वाली है तो फिर प्रार्थना की आवश्यकता क्या रही ? " यह लोग आत्मा को परमेश्वर ही समझते हैं। मैडमजी जब कि उक्त वचनों में हमें बतला रही हैं कि प्रार्थना की आवश्यकता नहीं और मनुष्य को परमेश्वर ही मानो, तो फिर उन का यह लेख कि हमारी प्रार्थना वास्तव में एक गुप्त विधि है, कैसी अनोखी बात है ? एक स्थल पर तो बतलाना कि आत्मा ही ईश्वर है और फिर यह लिखना कि ससीमभाव उस असीम ईश्वर तक नहीं जा सकते, विचित्र बात है। हम पूछते हैं कि क्या ईश्वर भी ससीम भाव रखता है और क्या उस ईश्वर के भाव साधारण दशा में, फिर अपने पास नहीं पहुंच सकते ? यदि ससीम भाव जीवात्मा के मानो तो तो ठीक है परन्तु मैडमजी के विचार में ईश्वर से पृथक् जीवात्मा कोई नहीं है। मैडम जी ससीम भावों को अभ्यास द्वारा चेतन शक्ति बना

देना प्रार्थना बतलाती हैं इस के यह अर्थ हुए कि ईश्वर अपने ससीम भावों को अभ्यास द्वारा चेतन शक्ति बना देता है। मैडमजी के लेख का सारांश यह है कि (१) जीवको ईश्वर होने के कारण प्रार्थना की आवश्यकता नहीं (२) फिर ईश्वर वा जीव को ससीम भाव चेतन बनाने के लिये प्रार्थना की आवश्यकता है। मैडमजी जीव को परमेश्वर सिद्ध नही कर सकीं। हम नहीं जानते कि यह लोग पुनर्जन्म को क्यों मानते हैं ? कदापि इन के विचार में परमेश्वर मर कर जन्म ले सकता होगा। " थियासोफी " के मत अनुसार प्रत्येक ईश्वर है।

अब हम यह दर्शाना चाहते हैं कि मैडम की अनुयायी " एनीबिसेंट जी " ऐसे ही मत को प्रतिपादन करती हुई लोगों को जड़ईश्वर * बतला रहीं हैं।

"एनीबिसेंट" की अंग्रेज़ी पुस्तक के उर्दू उल्था "मखज़न इसरार थिआसोफी" प्रथम भाग के पृष्ट ६१ पर लिखा है कि " सब ही आत्मा अर्थात् वास्तविक सत्ता के नाना रूप हैं, और उसी के भिन्न भिन्न प्रकार के प्रादुर्भाव की संगति को ब्रह्माण्ड कहते हैं। यथा प्रत्येक अणु में पृथक् पृथक् और सर्व अणुओं के संघात में वही एक वस्तु है अर्थात् आत्मा ही वास्तव में भिन्न भिन्न कक्षा और श्रेणियों में भिन्न भिन्न रूप में दृष्टि पड़ रहा है"।

" थिआसोफिस्ट एनीबिसेंट" के इन वचनों की पुष्टि में

* Impersonal God = जड़वत् वा ज्ञानादि से रहित ब्रह्म।

उस की पुस्तक के उर्दू उल्था † करने वाले उसी पृष्ट पर प-ञ्जाब देश के एक "सूफी" का वचन "थिआसोफी" के सिद्धान्त की महिमा दिखाने के लिये इस प्रकार लिखते हैं कि: --

" हर ने हर विच धूम मचाई। ज़ात सिफ़त में रही समाई ॥
अव्वल नाम अहद धर लीना। मीम मिला फिर अहमद कीना ॥
मन मोहन ने मन हर लीना। सांचे कहूं मोहे राम दुहाई ॥
हर ने हर विच धूम मचाई ॥

मक्के जा हाजी बन आवें। बिन्द्राबन में गौ चरावें ॥
लंका चढ़ के नाद बजावें। कहीं हो मियां रांझा अलख जगाई ॥
हर ने हर विच धूम मचाई ॥

चान्द सूरज और धरत अकाशा। सब में जारी है अबनाशा ॥
हर हर में है हर का वासा। खाली कोई जगह न पाई ॥
हर ने हर विच धूम मचाई ॥

पांधे काज़ी की मत हीनी। पोथी पढ़ पढ़ थोथी कीनी ॥
मन उरफां की सुध न लीनी। तां ते उन की बुद्ध बिसराई ॥
हर ने हर विच धूम मचाई ॥

हर में हर को देखा साधो। हर में हर को देखा।
आपे गौआं आपे बछड़े। आपे चोवन वाला ॥
आपे पीवे आप पीलावे। आप फिरे रखवाला ॥ हर में हर०
आपे भट्ठी आपे मदधर। आपे होत कलाला ॥
आपे पीवे आप पीलावे। आप फिरे मतवाला ॥ हर में हर०

† लुध्याना (पंजाब के बाबू अवनाशचन्द्र बिसवास जी ॥

एक डोर में सब जग बांधा । जो बांधा सो झूटा ।।
राह चला सो मनज़ल पहुंचा । कुराह चला सो लूटा ।। हर मे हर०
ठाकुरद्वारे ब्रह्मा कहिये । मक्के अन्दर शेख़ा ।।
एक गुरु के दोनों चेले । उन में मीन न मेखा ।।
हर में हर को देखा साधो । हर में हर को देखा ।।

(मख़ज़न इसरार थिआसोफ़ी पृ ६१—६२)

इन वचनों के देखने से विदित होता है कि " थिआसोफिकलसभा " क्या शिक्षा संसार में फैलाना चाहती है ? क्या वह मत जो तुच्छ अल्पज्ञ चेतन जीव को जड़स्वरूपीब्रह्म और सतचितआनन्द ब्रह्म को ज्ञान आदि से रहित जड़स्वरूपीब्रह्म वतलाएं ठीक है ? वैदिक ज्योति दर्शा रही है कि जीव कभी भी ईश्वर नहीं हो सकता और न ही ईश्वर ज्ञान से रहित जड़ है । जीव को ईश्वर से बल लाभ करने के लिये स्तुति, प्रार्थना द्वारा यत्न करना चाहिये, ।

संसार के लिये एक ही सच्चा मार्ग है ।

कई लोग कहते हैं कि हम ने मान लिया कि वैदिक स्तुति आदि ग्रहण करना हिन्दुओं के लिये अच्छी बात हो सकती है, परन्तु क्या आवश्यकता है, कि यूरोप (हरिवर्ष) अमेरिका (पाताल) और नाना देशों के रहने वाले इस को ग्रहण करें ? हम उन के उत्तर में कहते हैं कि सत्य केवल एक ही होता है दो

नहीं। यदि किसी से पूछो कि दश और दश कितने हुए तो वह कहेगा कि बीस, संसार भर के लोगों से दश और दश का जोड़ पूछो, तो यही एक सत्य उत्तर मिलेगा। परन्तु जो भ्रम में होगा वह उन्नीस, अठारा आदि नाना उत्तर देगा। सत्य केवल एक होता है और असत्य नाना। वैदिक सिद्धान्त सत्य सिद्धान्तों का नाम है। सत्य सिद्धांत सर्व देशों और द्वीपों के निवासियों के लिये एक ही हो सकते हैं भिन्न भिन्न नहीं। वैदिक स्तुति, प्रार्थना और उपासना सर्व भूगोल के मनुष्यों के धारण करने योग्य हैं, न कि केवल हिन्दु आदि के लिये ही। जहां जहां भूगोल भर में सत्य हैं वहां वहां वैदिक सिद्धान्त वर्तमान समझो। सत्य विद्या वैदिक विद्या है, सत्य कर्म वैदिक कर्म हैं, सच्ची उपासना वैदिक उपासना है। हम जिस देश में सत्यज्ञान सत्यकर्म और सत्य उपासना देखें, हमें कहना चाहिये कि यह वैदिक ज्ञान, वैदिक कर्म और वैदिक उपासना है। स्वर्ण चाहो किसी स्थान में क्यों न हो स्वर्ण ही है। सत्यार्थप्रकाश (पृ० ३३२) में स्वामी श्रीदयानन्दजी लिखते हैं कि पुराणों में भी जो सच्ची बातें हैं, वे वेदादि सत्य शास्त्रों की हैं। जहां जिस पुस्तक और देश में आप सत्य पाएं उस को वेद का अंश ही समझना चाहिये। जहां जहां सत्य दीखता और सुनने में आता है वहां वहां वेदों में से ही फैला है" ॥ *

---

* वेदभाष्यभूमिका पृष्ट ५८ ॥

सत्य का कभी कोई खण्डन नहीं कर सकता। असत्य के भी खण्डन करने से हमारा प्रयोजन सत्य ही दर्शाना होता है। सत्य जहां एक है वहां यह निर्भय है। खण्डन के भय से रहित हो कर यह अपने स्वरूप से असत्य का खण्डन करता है, जैसा कि सूर्य्य उदय होने पर अन्धकार को नष्ट करता है॥

जहां आप दश और बीस कह दो, उस के आगे अठारा, उन्नीस ठैर नहीं सकते। सत्य रूपी सूर्य्य का प्रकाश निर्भ्रान्त है, असत्य रूपी दीपकों की ज्वाला तम रूपी धूम से पृथक् नहीं हो सकती। विचार कर देखो तो सत्यके अर्थ ही स्थिति के हैं। ऋषियों ने इसी लिये कहा है कि सत्य की सदैव जय होती है। पश्चिमी विद्या भी मान रही है कि जो वस्तु है, उस का नाश कोई क्योंकर कर सकता है? प्रोफैसर (भट्ट) "मैक्समूलर" अपनी पुस्तक * (भारतभूमि हमें क्या शिक्षा सिखलाती है) में संस्कृत के सत्य शब्द की उत्तमता अनुभव करते हुए मानो इस शब्द पर ही मोहित हो रहे हैं। नाश होना सत्य का स्वभाव ही नहीं, बल देना विजय पाना एक मात्र इसी के लक्षण हैं। स्वर्णकी तरह इसकी जितनी परीक्षा करोगे उतनी ही यह उत्तमता दर्शाएगा। वैदिक सिद्धान्त इस लिये अखण्ड, सर्वदेशी और हिन्दु मुसलमान सब के लिये समान हैं। आर्य्य समाज का द्वार हिन्दु, मुसलमान, ईसाई आदि के लिये समान खुला हुआ

* "India—What can it teach us?" By F. Max Muller.

है। आर्य्यसमाज कोई हिन्दू जाति की सभा नहीं किन्तु मनुष्य जाति की सभा है ॥

हम ईश्वर का नमस्कार करने से धन्यवाद क्यों करें ?


ई लोग शंका किया करते हैं कि स्तुति आदि करते हुए हमें क्या आवश्यकता है, कि ईश्वर को नमस्कार करें ? उस को हमारे नमस्कार की आवश्यकता नहीं, और ना ही ऐसा करने से वह हमारे अपराध क्षमा करेगा ॥

यह सत्य है कि ईश्वर को हमारे नमस्कार की आवश्यकता नहीं और नही वह हमारे नमस्कार से अपराध क्षमा करता है। नमस्कार करने से उसका धन्यवाद करना हमारे अपने ही स्वभाव को नम्र और प्रेममय बनाता है। हमारा नमस्कार करना इस बात का दृष्टान्त है कि हम उसकी दया को जिस से उस ने सर्व संसार के पदार्थ हमारे सुख और भोग के लिये निर्माण कर रक्खे हैं अनुभव कर रहे हैं। हम अल्पज्ञ होने के कारण सर्वज्ञ परमात्मा के उपकार को अनुभव करने पर स्वाभाविक ही नम्र भाव को प्राप्त हो अपनी नम्रता तथा प्रेमका नमस्कार से प्रकाश करते हैं। संसार में भी देखने में आता है कि हम भद्र पुरुषों का उनके परोपकार को स्मरण करते हुए आदर सत्कार करते हैं। माता, पिता, गुरु, मित्र तथा उपदेशक का हम इसी लिये मान करते हैं। कुत्ता भी रोटीका टुकड़ा खा कर पूंछ हिलाने से

हमारे उपकार को अनुभव करने का बोधन कराता है। हम नित्यप्रति बोल चाल और लेन देन में धन्य धन्य * के शब्द पुकारते हैं। क्या जिस का हम धन्यवाद करते हैं उस से हम अपराध क्षमा कराना चाहते हैं? नहीं किन्तु धन्यवाद हम दूसरे के प्रेम वा उपकार को अनुभव करने पर दिया करते हैं॥

यह आवश्यक नहीं कि कोई पुरुष उच्च स्वर से धन्य धन्य अथवा नमो नमः के शब्द पुकार पुकार ईश्वर के परोपकार के अनुभव करने वाले निज प्रेममय स्वभाव का किसी जीव को बोधन कराए। मन में ही उसके उपकार वा दया को अनुभव करे यह भी ठीक है। कृतघ्नता से सदैव दूर रहना यह सरल आत्मा का स्वाभाविक लक्षण है। जैसे कोई अग्नि की स्वाभाविक दाह शक्ति को नष्ट नहीं कर सकता वैसे ही मनुष्य के परोपकार अनुभव करने की प्रेममय शक्ति को कोई दूर नहीं कर सकता। मनुष्य जिस का धन्यवाद करता है उसी से प्रेम भी करता है। जितनी किसी की दया वा उपकार हम सोचते हैं उतना ही हमारा प्रेम अथवा रुचि उस की ओर बढ़ती है। जो हमारा कल्याण करता है उस से प्रेम करना जीव का स्वभाव है। जो जीव को दुःखदाई है उस से द्वेष करना जीव का स्वभाव है। **धन्यवाद प्रेम की भूमिका है**। रुचि अथवा प्रेम स्तुति के अन्तर्गत रहता है। ईश्वर की स्तुति करने से जब

* Thanks.

हमें उस के दयालु, परोपकारी होने का ज्ञान होता है, तब ही हम उस का धन्यवाद नमस्कार मन से करने को उद्यत हो जाते हैं। लोक में भी जब हम किसी मनुष्य को मिलते हैं तो प्रथम पूछते हैं कि आप की स्तुति कीजिये, जब स्तुति सुनते हैं कि आप आर्य्य समाज के उत्साही सभासद हैं, तो हाथ जोड़ सिर झुका प्रेम पूर्वक नमस्ते करते हैं। फिर सदैव के लिये उन से प्रेम करना जिन को कि नमस्ते की है, उचित समझते हैं।

नास्तिक भी जिन को अपनी स्थूल दृष्टि में उपकारी समझते हैं, उन का नमस्कार आदि से धन्यवाद करते हुए उन से प्रेम करते हैं। निम्न लिखित वेद मंत्र ईश्वर की स्तुति बतलाता हुआ प्रेम की भूमिका नमस्कार रूपी धन्यवाद का बोधन करा रहा है!

" यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः "।

प्रेम की भूमिका धन्यवाद और प्रेम की समाप्ति **समर्पण** हैं। ईश्वर की दया को अनुभव करते और उस से प्रेम करना अपना स्वभाव समझते हुए, जब हम उस की इच्छा के अनुकूल जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा प्रेम बद्ध होकर करें तो इस प्रतिज्ञा के आचरण को समर्पण कहते हैं। वही मनुष्य यह वचन मुख से कह सकता है कि " ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो " जो अपने आत्मा को परमात्मा के समर्पण करता हुआ कोई काम भी उस की आज्ञा के विरुद्ध नहीं करता॥

प्रार्थना के कुछ उदाहरण।



प्रार्थना* दो प्रकार की है एक विधिमुख जो कि शुभ गुणादि की प्राप्ति करना और दूसरी निषेधमुख अर्थात् दुष्ट गुणादि का त्याग करना। प्रत्येक पुरुष बालकपन से मृत्यु पर्य्यन्त किसी न किसी प्रकार की प्रार्थना अथवा इच्छा को कर्म द्वारा सिद्ध करना चाहता है। प्रत्येक जन अपने ज्ञान और पुरुषार्थ के अनुकूल ही प्रार्थना को करता तथा उसकी सफलता को प्राप्त होता है॥

एक बालक के मन की यदि पड़ताल करो तो उसकी प्रार्थना अथवा इच्छा खिलौने, वा मीठे फल के धारण करने के लिये होगी, बालक इसी स्वाभाविक प्रार्थना की पूर्त्ति के लिये अपनी सामर्थ्य अनुकूल पूर्ण यत्न करता है॥

एक रोगी की प्रार्थना, रोग निवृत्ति की होती है, और औषधी पान आदि साधन वह उपयोग में लाता है॥

एक भोगी विषय सेवन की मन से दुष्ट प्रार्थना करता और छल आदि कर्मों से इस को पूर्ण करने के उपाय करता है। विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने की प्रार्थना करता हुआ रात दिन पुस्तकों का घोटा लगाता है॥

अफ़रीका की घटा टोप ऊपर भूमि में रहने वाले ठिगने

* Aspiration.

मांसाहारी लोग जिनका कि नाम डाक्टर कराफ* "डोक्रू" बतलाते हैं और जो मुसलमान आदि लोगों के दीन दास बन रहे हैं, वह अपनी पराधीनता के दुःखों को अनुभव करते हुए इस प्रकार पाठमयी प्रार्थना करते हैं "हे येर ! यदि तू ‡ वास्तव में है तो तूने हमको पराधीन क्यों बना रक्खा है, हम भोजन वा वस्त्र नहीं चाहते, क्योंकि हम सांपों, च्यूंटियों, और चूहों पर निर्वाह करते हैं, तूने हम को बनाया है, क्या तू हम को औरों के पादाक्रान्त से नहीं बचा सकता"। वह ईश्वर को येर कहते हैं। उनकी पाठमयी प्रार्थना उन को कुछ फल नहीं दे सकती।

क्रेक महोदय एक नामी ग्रन्थ कर्त्ता अपनी पुस्तक में सिद्ध करते हैं कि पश्चिमी देशों में कोई भी पुरुष, महापुरुष नहीं बना, विना उन के जिन्हों ने कि उच्च आदर्श को धारण करने के लिये पूर्ण पुरुषार्थ किया। वह इस पुस्तक में सच्ची प्रार्थना करने वालों के जीवन वृत्तान्त भी देते हैं जिन से विदित होता है कि शुभ इच्छा की पूर्त्ति, पूर्ण पुरुषार्थ द्वारा ही सब देशों के † महापुरुष

---

* Kraff.

‡ Quoted in the "Darkest England" by General Booth.

† पश्चिमी महापुरुषोंके नाम उस पुस्तक में से कुछ हम लिखते हैं। न्यूटन, लीनस, कुक, गेलीलियो, पास्कल, बैंजेमन फ्रैंकलन, पाईथागोरस, बेकन, केपलर, डीमोस्थनीज़, डैसकार्टीज़, होमर, आरकीमीडीज़, कोलंबस, मिलटन, शेक्सपीअर, पीटर, डेवी, जेम्सवाईट, रिचर्ड अर्करा‌ईट, मैडम रोलैंड, अना विलयम्स ॥

करते आये हैं।

यह प्रार्थना ज्ञान अथवा स्तुति के पश्चात् ही उत्पन्न हुआ करती है। जिस ने पाताल नहीं देखा वह पाताल देश जानेका कभी संकल्प भी नहीं करेगा। उन्नति मूलक इच्छा को कर्म द्वारा प्राचीन समय में आर्य्य लोग सिद्ध किया करते थे। जब विश्वामित्र जीने ब्रह्मर्षि बनने की प्रार्थना धारण की तो कर्म रूपी साधन करते हुए वह क्षत्री से ब्राह्मण बन गए। भूगोल के प्राचीन पितृ सब से उत्तम प्रार्थना ईश्वर प्राप्ति के लिये करते थे और इस को सफल करने के लिये ही वह वेद पढ़ते, तप करते, और ब्रह्मचर्य्य आदि अनेक विध कर्म और साधनों से युक्त होते थे। उनका यह वाक्य उन की इस महान् प्रार्थना का हमें बोधन कराता है

"यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति"

कहां गये वह भरद्वाज, जिन्हों ने सांसारिक परोपकार करने की, प्रार्थना की सिद्धि के लियें "इन्द्र" से वैद्यक शास्त्र यत्न द्वारा सीखा था? महर्षि कणाद से तत्त्ववेत्ता कहां हैं जो कच्चा अन्न खाते हुए पदार्थ विद्या का परिपक्व भोजन छोड़ गये? वह योगीराज पतञ्जलि कहां हैं, जो मोक्ष सिद्धि के उपदेश की इच्छा से योग शास्त्र रच गये? देव वाणी की वृद्धि की प्रार्थना करने वाले परम योगी पाणिनि कहां गये जो शब्द शास्त्र का कोष छोड़ गये? उक्त सर्व ऋषि मुनि जीवन यात्रा को सफल करते हुए मोक्षधाम को पधार गये।

महात्मा पण्डित्त गुरुदत्त जी जिन प्रार्थनाओं को यत्न से जीवन में सिद्ध करते थे, उनका वर्णन इस प्रकार उन के जीवन चरित्र के पृष्ट ७७, ७८, ८० आदि पर मिलता है

"(२४ अपरेल १८८५) कैसी अशान्ति मच रही है? मोह को छोड़ कर "मिल" और दयानन्द क्यों नहीं बनता"?

इस वाक्य से सिद्ध है कि पण्डित जी मन में संकल्प कर रहे और कह रहे हैं कि हे! गुरुदत्त तू इङ्गलेण्ड के ज्ञानी * "मिल" और स्वामी दयानन्द बनने का यत्न कर। आर्य्यसमाज के सभासद जानते हैं कि श्रीपण्डित गुरुदत्त जी ने इस संकल्प को पुरुषार्थ से ही अपने जीवन में सिद्ध कर दिखाने का पूर्ण यत्न किया था॥

श्री महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी एक और स्थल पर लिखते हैं कि "हे! आत्मा तू जो उड़ना अर्थात् उच्च अवस्था को प्राप्त होना चाहता है अभी तक बन्दीग्रह में ही है तो भी आशा है। दृढ़ इच्छा इतनी प्रतिकूल दशाओं के समूह के विपरीत क्या कर सकती है। तथापि यह क्या नहीं कर सकती"।

(१६ जनवरी १८८७) "मुझे **योगविद्या** सीखने का यत्न करना और जीवन में उपदेशक बनना चाहिये"।

"क्या मैं सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद नहीं कर सकता, अथवा क्या मैं एक संस्कृत मैगेज़ीन नहीं चला सकता"?

* J. S. Mill, a Philosopher of England.

सब को विदित है कि महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी ने इस संकल्प को सिद्ध करने के लिये वैदिक मैगेज़ीन नामी मासिक पत्र जारी कर दिखाया था ॥

" मैं आज से प्रण करता हूं कि आध घंटा योगाभ्यास में लगाया करूंगा" ।

" योग मुझे अवश्य करना चाहिये "

" मेरे मन की चंचलता शान्त नहीं हुई, ग्रीष्म ऋतु का आरंभ हो गया है" ।

"मुझे तुरंत ही योगाभ्यास आरम्भ करना चाहिये, दो वर्ष से मैंने अभ्यास छोड़ दिया, यह कैसी शोचनीय बात है—धिक ! धिक ! धिक ! धिक ! ! "

सच्ची प्रार्थना जो कि निर्बलता बोधक होने से हमें पात्र और योग्य बनना सिखाती है, उसका यह दृष्टान्त है। सच्चा पश्चाताप और कर्मों की पड़ताल इसी को कहते हैं कि मनुष्य अपने कर्त्तव्य का विचार करके अपने मन को उत्तम काम करने के लिये महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी के सदृश एकान्त में दृढ़ करे। सभा वा समाज में पश्चाताप करने की अपेक्षा एकान्त में उक्त प्रकार जीवन को पड़तालना चाहिये ॥

" मुझे योगाभ्यास अवश्य आरंभ कर देना चाहिये, नहीं तो शाब्दिक आय-व्यय से कुछ लाभ नहीं है" ॥

"मैंने योगाभ्यास मर्य्यादा से किया"

"मुझे कल सवेरे उठ कर यदि हो सके तो योगाभ्यास और गायत्री का जप करना चाहिये"।

"मैंने सवेरे उठ कर सहस्र * जप गायत्री का किया, सायं-काल मुझे उसके पास जा कर योग दर्शन का प्रथम अध्याय समाप्त करना चाहिये"।

इत्यादि दृष्टान्तों से सिद्ध है कि सच्ची प्रार्थना किस प्रकार महाजन किया करते हैं ॥

सुप्रसिद्ध बकल अपने § इतिहास (प्रथम भाग, अध्याय २) में हिन्दोस्तान और यूनान देश का वर्णन करते हुए, प्रार्थना विषय में ऐसा लिखते हैं कि जिस से उन को यह सिद्ध करना प्रयोजन है कि हिन्दोस्तानी पुरुषार्थ करना न जानते हुए, विघ्नों की निवृत्ति के लिये कल्पित देवताओं से (पाठमयी) प्रार्थना करना ही जानते थे। कुशिक्षा से वास्तव में हिन्दोस्तानी दो सहस्र वर्षों से तो बहुत कुछ ऐसे ही होगये हैं जैसा कि बकल ने लिखा है। परन्तु विदित रहे कि इस से बहुत पहले यहां के लोगों की यह अवस्था न थी। प्राचीन समय में वेदों के प्रचार होने के

---

* "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" इस योग सूत्र के अनुसार पं० गुरुदत्त जो वैदिक मैगेज़ीन में लिखते हैं कि जप से ईश्वर के गुणों को पाठ द्वारा विशेष समझना होता है। जप वा पाठ जैसा कि सूत्र में दर्शाया है अर्थ के भाव के लिये हैं न कि अर्थ रहित केवल पाठमात्र के लिये ।

§ Buckle's History of Civilization Vol. I. Chapter II.

कारण प्रत्येक नर नारी ज्ञान, कर्म, और उपासना की महिमा जानती हुई विघ्नों को पुरुषार्थ से दलन करती थी। महर्षि कपिल के वचन, ऋषियों के जीवन और वेदों के अनेक मंत्र पुरुषार्थ का उपदेश दे रहे हैं। यदि आज हिन्दोस्तानी आलस्य के इस कलंक को प्रतीत करते हुए वैदिक शिक्षा ग्रहण करें, तो वह पृथिवी के प्राचीन पित्रों की तरह अपने जीवन से सिद्ध करके दिखा सकते हैं कि हम पुरुषार्थ के रूप, ऋषियों के सपूत हैं॥

प्रारब्ध और पुरुषार्थ।

कई लोग यह शंका किया करते हैं, कि शुभ गुणों की प्रार्थना को कर्म द्वारा हम कैसे सिद्ध कर सकेंगे, जब तक कि हमारे पुराने कर्म अर्थात् प्रारब्ध वर्तमान कर्म के अनुकूल न हों? हम इसके उत्तर में यह कहेंगे कि हमें यह कैसे विदित हो कि हमारे पुराने कर्म वर्तमान कर्म के अनुकूल नहीं हैं? पुराने कर्मों को वर्तमान कर्मों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल जानने के लिये यह आवश्यक है कि हम, इस समय कर्म करें, यदि पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए हमारे वर्तमान कर्म सिद्धि को प्राप्त हो गये, तो हम जान जाएंगे कि हमारे पुराने कर्म अनुकूल थे। यदि पुरुषार्थ करने से हमारे वर्तमान कर्म सफल न हुए, तो हमें विदित हो जाएगा कि हमारे पुराने कर्म अनुकूल न थे। प्रारब्ध को अनुकूल वा प्रतिकूल जानने के लिये भी हमें वर्तमान में कर्म करने की अत्यन्त आवश्यकता ठैरती है॥

यदि कोई कहे कि हम मनुष्य की स्वाभाविक रुचि से जान सकते हैं, तो हम पूछेंगे कि जब तक कोई कर्म किया न जाए तब तक रुचि का भी कैसे पता लग सकता है? जब कोई कर्म आरम्भ किया जावे और वह कर्म हमें अपने स्वभाव के अनुकूल प्रतीत होने लगे तब ही तो हम कह सकते हैं कि इस में हमारी रुचि है। जब तक कोई जल में हाथ पग न मारे तब तक कोई किस तरह से कह सके कि उसकी तैरने में रुचि है वा नहीं ॥

प्रारब्ध को हम कल के किये हुए कर्मों से उपमा दे सकते और पुरुषार्थ को वर्तमान कर्म कह सकते हैं। यदि किसी पुरुष ने कल कुपथ कर लिया तो क्या आज वह औषधी खा नहीं सकता? यह सत्य है कि कर्म का नाश नहीं होता और शुभाशुभ कर्म विना भोगे नहीं छूटते। जब कि हमारे पिछले किये हुए कर्म अपना फल दिये विना नहीं रह सकते तो क्या इस समय जो हम कर्म करेंगे वह नाश हो जाएंगे? जो लोग प्रारब्ध कर्मों के विचार से वर्तमान समय में शुभ कर्म नहीं करते वह इस बात को नहीं सोचते कि पिछले कर्म जब फल अवश्य देंगे तो क्या यह वर्तमान के कर्म फल न दे सकेंगे?

हम इस समय दुःख भोग रहे हैं, जिस से अनुमान होता है कि हमारे पिछले कर्म रोग रूप थे। क्या यह अनुभव करते हुए कि हम रोगी हैं, हमें कुसंग, कुसंस्कार रूपी देश को छोड़कर, शुद्ध ज्ञान की धूप तथा शुद्ध संस्कार के देश में वास नहीं करना चाहिये?

वर्तमान समय में कर्म करते हुए ही हम प्रारब्ध से यदि वह अनुकूल हो तो सहज से लाभ उठा सकते और यदि वह प्रतिकूल हो तो बहुत पुरुषार्थ करने के पश्चात् उस पर विजय पा सकते हैं। भावी प्रारब्ध बनाने के लिये हमें अवश्य पुरुषार्थ करना चाहिये। पीछे जब कर्म किये तो प्रारब्ध बना, इस प्रकार पुनर्जन्ममें वर्तमान पुरुषार्थ ही प्रारब्ध बन सकेगा। इस लिये नित्य धार्म्मिक पुरुषार्थ करते ही रहना चाहिये॥

पृथिवी को स्वर्गधाम बनाने के लिये सब से प्रथम उपासना की आवश्यकता है।



इस समय यूरोप और अमेरिका के रहने वाले जो कि उन्नति के मार्ग में चल रहे हैं उन्होंने जड़ जगत की स्तुति को जिन को कि वह "सायंस" कहते हैं, अपनी उन्नति का मूल मन्त्र सिद्ध कर दिखाया है। जड़ पदार्थों के यज्ञ रचने से उन्हीं ने नाना विध कला कौशल रच, पुरुषार्थ से भौतिक सुखों की प्राप्ति की है। भौतिक ज्ञान और भौतिक कर्म से युक्त होकर, जड़ जगत् के एक मात्र उपासक बन रहे हैं। ईश्वर उन के लिये कोई सत्ता नहीं है। ईश्वर की स्तुति, ईश्वर की प्रार्थना और ईश्वरीय उपासना अथवा * ब्रह्म यज्ञ के फल वह अनुभव नहीं

* ब्रह्मयज्ञ का दूसरा नाम सन्ध्या और सन्ध्या का दूसरा नाम, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना और उपासना है। "रात और दिन के संयोग समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुस्ति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये" (देखो पञ्च महायज्ञ विधि स्वामी जी महाराज कृत)

कर सके । उनका सारा पुरुषार्थ एक मात्र लौकिक व्यवहारों की सिद्धि के लिये लग रहा है और तिस पर भी सारे नर नारी सच्चे आत्मिक सुख के भोगने से शून्य हो रहे हैं । वह मनकी शान्ति के पीछे भागते हैं और आत्मिक शान्ति उनके आगे आगे भाग रही है ॥

जड़ वस्तु का नाद बजाते हुए, भौतिक शस्त्र हाथों में पकड़े हुए, वह विषय सुख के कोष की पूर्त्ति के लिये उद्यत हो रहे हैं। उनके धन्दे रचने वाले मन को एक घण्टा सायं प्रातः ईश्वर के ध्यान में लगने का अवकाश कहां ? कोयला, लोहा, ओकसीजन (प्राणवायु) आदि के स्तोत्र से उन के शास्त्र भरपूर हो रहे हैं, परन्तु कहीं उन शास्त्रों में विश्वपति ईश्वर का स्तोत्र दृष्टि नहीं पड़ता ? जड़ जगत् के उपासक होने से वह एक क्षण भी इसको तज कर एकान्त और शान्त हो किसी और चेतन शक्ति की उपासना के लिये उद्यत् नहीं हो सकते । इस सांसारिक उन्नति का चमत्कार ऐसा अद्भुत है कि बकल से कई लेखक उस की प्रशंसा के गीत गाना अपना उद्देश्य समझते हैं। चारों ओर से बुद्धिमान् और विद्वान् इस उन्नति की जय जय ध्वनि इतने उच्च स्वर से पुकारते हैं, कि कानों के परदे फटे जाते हैं । इस उन्नति मार्ग में चलते हुए, वह पग पग पर " उन्नीसवीं सदी " और उसकी फड़कती हुई उन्नति का महात्म पाठ करते हैं । अन्य सोये हुए मनुष्य उनके कोलाहल और उनकी जय ध्वनि सुनते हुए

आंखें खोल उन की ओर चकित हो हो देखते हैं। रेलों की खड़खड़ाहट, बिजली की जगमगाहट, कलों के फुंकार, डिनामाइट के चमत्कार, मानो अपने स्वरूप से इस उन्नति की महिमा का उपदेश दे रहे हैं। इस उन्नति की बाह्य मूर्त्ति को देख कर मनुष्य एक क्षण के लिये स्वयं मूर्छित् मूर्त्तिमान हो जाता है। इस जङ्गी ढ़ोल की गर्जन सिंह नाद की तरह, मनुष्यों को आगे से भगाए चली जा रही है॥

साधारण पुरुष का काम नहीं की इस उन्नति के स्वर्णमयी आवरण को उतार कर उस के ढ़पे हुए मुख का दर्शन कर सके। ऐसे वीर बहुत थोड़े हैं जो नरसिंह की गर्जन को सुनते हुए भागना छोड़ खड़े होकर निर्भयता से उसके दर्शन करने का साहस कर सकें॥

तथापि पृथिवी ऐसे वीरों से शून्य नहीं है। पृथिवी पर ऐसे वीर हो गये हैं कि जिन्हों ने सिंह की गर्जन सुनते हुए उसके निर्भयतासे दर्शन ही नहीं किये, किन्तु सिंह के पग पाशों से जकड़ दिये और फिर सिंह के रूपको देखा और उसके एक एक लोम की पड़ताल की। ऐसे वीर पृथिवी पर हो गये हैं जिन्हों ने कि स्वर्णमयी आवरणों की झलक से न डगमगा कर आवरण उतार चादर वाले का मुख देख लिया। हमारे ज्ञान नेत्र इस समय भी ऐसे ही पश्चिमी वीरों की एक पंक्ति खड़ी हुई

देख रहे हैं। " हेनरी जोर्ज * " " कारपैण्टर ¶ " और " परौढन † " आदि अनेक **पश्चिमी वीर** हमें साक्षी देते हैं कि हमने इस भौतिक उन्नति के स्वर्णमयी आवरण को उठा कर उसके यथार्थ रूप के दर्शन किये हैं। लो ! कैसा खेदजनक समाचार है, कि उन्हें स्वर्णमयी आवरण के उठाते ही एक, रोगी के रूप का दर्शन हुआ इस सिंह की गर्जन सुन कर डरने और भागने वालो थम जाओ, जिस गर्जन से तुम डर रहे हो, वह गर्जन तो नरसिंह की क्लेश की चीख़ है। रोगी सिंह स्वयं ही रो रहा है, फिर तुम उसकी गर्जन से क्यों भागते हो ?

यह भौतिक उन्नति जिसने कि मनुष्य के सुख के लिये जड़ जगत् को लताड़ना और जीतना आरम्भ किया था, अब मनुष्य को ही दलन और पादाक्रान्त कर रही है। जिन मनुष्यों की इस ने सेवा करनी थी, उन मनुष्यों के हाथों से भोजन ग्रास छीनती हुई उसको भूख और रोग से पीड़ित कर रही है। जिन मनुष्यों के लिये इसने घोड़ा बन कर रहना था उन पर यह स्वयं चढ़ कर उन को औंधा शिर के बल गिरा रही है। जहां सर्व मनुष्यों की आवश्यकताएं भले प्रकार पूर्ण करना, इसका जीवन उद्देश्य

---

* Henry George, the author of " Progress and Poverty " social Philosopher and Orator.

¶ Edward Carpenter, the socialistic writer and the author of " Civilzation: its cause and cure. "

† P. J. Proudhon, the French writer and the author of " What is property. "

८

था, वहां यह पक्षपात में गिर कर मुट्ठी भर मनुष्यों को धन से पूरित करती हुई, असंख्य मनुष्यों को रोटी की जगह पेट पर पत्थर बंधवा रही है। इसने भाई से भाई लड़ाने का ठेका लिया हुआ है। इस ने मनुष्यों को मनुष्यों से दलन करा कर रक्तनद बहा दिये हैं। इसी ने रेल, तार, व्योपार, को भय के साधन बना दिये हैं। स्वर्णमयी चादर उतारतेही देखो तो इसके माथे पर लहू का टीका लगा हुआ है। इसका मुंह खुला और पेट खाली है। इस का हृदय ठण्डा ओर शिर अग्निरूप है। यह अपनी विद्यारूपी आंखों में कपट के सुरमे की भर भर सलाइयां डाल रही है। इस के गाल जो दूर से लाल प्रतीत होते थे, पास जा कर देखो तो कुष्ट के घाव ही हैं। कान लगा कर सुनो तो, यह क्या पाठ कर रही है? कैसी धीमी स्वर से यह कह रही है कि बलवान निर्बलों को चट कर जाए। ठहर कर कहती है कि जिसकी लाठी हो उसकी भैंस रहे। नया आलाप इस प्रकार करती है कि औरों को नाश करने पर तुम अपना पेट भरो। इस के दक्षिण हाथ में भिक्षा पात्र और वाम हाथ में मोहरों की थैली है। जेलखाने, परिवारिक कलह, और पागलखाने इस के चमत्कार हैं। व्यभिचार, विषयासक्ति, मद्यपान, मांस भक्षण, अन्याय, वैर, अविश्वास, और नित्य की चिन्ता, सब ईर्सा की ठण्डी छाया में विश्राम करते हैं॥

* महात्मा जनरल बूथ अपने लेख में इसकी महिमा दर्शाते

* The Darkest England by General Booth.

हैं, कि तीस लाख नर नारी इंगलैंड में जहां कि इस जड़ उपासक उन्नति का प्रभाव है, निर्धनता और दुःखों के समुद्र में आज मूर्छित बहते हुए रोटी, हाय रोटी की पुकार मचा रहे हैं ॥

इंगलैंड की राजधानी लण्डन नगर में एक तरफ तो बड़ी बड़ी अटारियां जगमग जगमग आकाश से बातें करती हुई धन धान्य से पूरित दिखाई देती हैं और दूसरी ओर उसी लण्डन के * "ईस्ट एन्ड" कोन में अनेक पुरुष स्त्रियां और बच्चे भूख से व्याकुल दर्श के चान्द की तरह रोटी के दर्शनों की अभिलाषा करते धनवानों को शाप देने का एक मात्र विचार करते हुए, इस उन्नति के अन्तरीयरूप को कुछ दिखा रहे हैं। इसी लण्डन के कई कार्य्यालयों में सहस्र नर नारी अठारह घण्टे प्रतिदिन रोटी कमाने के लिये काम करते हुए कभी पूरे धन को भावी काल के लिये संचय नहीं कर सके। अमेरिका अथवा "आस्टरेलिया" में जहांकि यह भौतिक उन्नति फैल रही है, ऐसी ही मूर्त्तियां आपको मिलेंगी। अमेरिका में जहांकि एक धनी पुरुष अपने बच्चे के सोने के लिये सोने का हिण्डोला बनाता है, वहां उन के ही पड़ोस में भूख से व्याकुल कई नर नारी इस भौतिक उन्नति को शाप देती हुई रोटी की चिन्ता में रात का सोना तक खो बैठी हैं ॥

× महात्मा 'टालस्टाए' रूस देश के सहस्र पुरुष स्त्रियों

---

* "The Place of Politics in the Life of a Nation" by Annie Besant.

× What to do ? By Count Leo Tolstoi.

की दीन, मलीन और धन से रहित, कंगाल अवस्था का चित्र दर्शाते हुए हमें चकित कर रहे और इसे भौतिक उन्नति दर्शा रहे हैं ॥

हिंसा जोकि जड़ उपासक उन्नति का फल है। उस की लहु लुहान नदियों को देखते हुए, इस की गोद में पले हुए अनेक पश्चिमी धर्मात्मा विद्वान् इस प्रकार इस के रूप से घबरा रहे हैं ॥

§ " ग्लेडस्टोन " ने १८७१ के नवम्बर मास में लण्डन में व्याख्यान देते हुए शोक से कहा था, कि झगड़े जो युद्ध के विना निर्णय नहीं होते, यह बड़ी भारी न्यूनता है। उन का कथन है कि युद्ध एक भयानक और एक भारी छिद्र उन्नति का है ॥

§ " राबर्टपील " ने कहा था कि क्या समय नहीं आया कि यूरोप के राजे युद्ध के ठाठ को कम कर दें जो कि उन्होंने इतना बढ़ा रखा है ? क्या वह समय नहीं आया जब कि यह राजे कह सकें कि इस प्रकार व्यर्थ धन खोने से क्या लाभ है ? एक राजा जो जल, स्थल की सेना बढ़ाता जाता है क्या वह नहीं देखता कि अन्य राजे मेरा अनुकरण करेंगे ? यूरोप की उन्नति का दिन तब आयेगा जब कि सारे राजे मिल कर अपने अपने देशों में युद्ध के व्यय को कम करेंगे ॥

§ " अर्लआफ़एबरडीन " का कथन है कि यह जन श्रुति

" कि यदि तुम शान्ति चाहते हो तो युद्ध करो " सत्य नहीं है! यह बात पिछली जङ्गली जातियों पर घटती होगी, जब कि युद्ध करने पर कुछ व्यय नहीं लगता होगा। आग कल जब कि युद्ध की सामग्री के लिये बहुत व्यय चाहिये तो यह निष्फल है। युद्ध की सामग्री एकत्र करते ही शान्ति के स्थान में युद्ध आरम्भ हो जाता है॥

§ " जैनरल ग्राण्ट " का कथन है कि दो देशस्थ जातियों के मध्य में शान्ति मानो उन को उस समय तुष्ट न करे परन्तु यह मनुष्य के आत्मा को शान्ति देती है। यद्यपि मैंने युद्ध शिक्षा पाई है और कई संग्रामों में जा चुका हूं, मेरे विचार में इन सब लड़ाइयों में विना तलवार चलाए के भी उद्देश्य पूर्ण हो सकता था। मैं उस समय को देख रहा हूं जब कि एक न्याय सभा जिस को मिल कर सब देशस्थजातियें स्वीकार करें जातियों के झगड़े निवारण करने के लिये पर्याप्त होगी। इस के स्थान में हम क्यों बड़ी बड़ी सेनाएं रखें ?

§ " जान बराइट " निज के झगड़ों के निर्णय करने के लिये थोड़े वर्ष हुए, कि परस्पर लड़ना ही निर्णय का उपाय माना जाता था। आजकल वैसे ही विदेशियों के लिये युद्ध आवश्यक समझे जाते हैं। मेरे विचार में वह समय आयेगा, जब कि सर्वदेशस्थ जातियों के मध्य में युद्ध वैसे ही दुष्ट और पागलों के काम समझे जाएंगे, जैसा कि अब दो पुरुषों के मध्य में लड़ना समझा जा रहा है॥

§ " लार्डरोज़बरी " सब प्रकार का युद्ध घृणित है, प्रत्येक युद्ध पर हमें शोक करना चाहिये, क्योंकि यह उस उन्नति को एक पग पीछे ले जाता है जिस उन्नति को कि हमने वर्षों के प्रयत्न और महा पुरुषों के यत्न द्वारा प्राप्त किया है ॥

§ " केनन फ्रीमेण्टल " युद्ध का वास्तविक कारण आत्मिक है न कि भौतिक इस लिये इस की निवृत्ति का उपाय वही हो सकता है जो कि दुष्टाचार के लिये होना चाहिये ॥

§ " प्रोफैसर सीली " यदि दो मनुष्यों, ग्रामों, और नगरों के मध्य में लड़ाई रोकी जा सकती है, तो दो देशस्थ जातियों के मध्य में क्यों नहीं रोकी जा सकती ? इङ्गलेण्ड और स्काटलैण्ड बिल्ली और कुत्ते की तरह कई सौ वर्ष लड़ते रहे और अब वह आपस में एक हैं । जब हम यह सुना करते हैं कि अंग्रेज़ और फ्रांसीसी वा फ्रांसीसी और जर्मन कई सौ वर्ष पर्य्यन्त अपने विरुद्ध भाव न छोड़ेंगे तो हम को इङ्गलेंड और स्काटलैंड का दृष्टांत याद कर लेना चाहिये ।

§ " विकटर हियूगो " यदि हिंसा करना पाप है तो बहुत हिंसा करना कम पाप नहीं हो सकता । यदि चोरी करना लज्जादायक है, तो किसी देशनिवासियों को लूट लेना यश की बात नहीं हो सकती, हिंसा हिंसा ही है । यदि कोई अपने आप को " सीज़र वा निपोलीयन " कहले तो इस से कुछ भेद नहीं होता । अनादि ईश्वर के सन्मुख एक हिंसक का आचार बदल

नहीं सकता, चाहो फांसी दिये जाने वाले मनुष्य की टोपी के स्थान में राजकीय मुकट ही शिर पर क्यों न रखलें ? आजके लिये राजा हैं कल को लोग उन के स्थानमें होंगे। वह दिन आएगा जब कि "पैरस, लण्डन, पीटर्सवर्ग, वरलन, वाईना और टीयूरन" नगरों के परस्पर युद्ध ऐसे ही असंभव दिखाई देंगे जैसा कि "रोएन और एमीञ्ज़" नगरों के हैं। जब कि गोलियां और गोलों के स्थान में सम्मति ली जाएगी। जब कि तोपें अद्भुदालयों में दिखानें के लिये रक्खी जाएंगी जैसा कि आज कल पुराने समय के पीड़ा देने के शस्त्र रखे गये हैं। जब कि "अमेरिका" के मिले हुए देश यूरोप भर के सर्व देशों से प्रेम पूर्वक हाथ मिलाएंगे ॥

§ "डियूक आफ विलंगटन" युद्ध अत्यन्त भयानक वस्तु है यदि तुमने लड़ाई का एक दिन देखा होता तो तुम प्रभू से निवेदन करते कि हमें दूसरा दिन लड़ाई का न दिखा.

§ "जरैमी बेनथम" जो देशस्थ जाति सब से पूर्व अपने युद्ध सम्बन्धी व्यय को घटाने और सेना की संख्या नियत करने में उत्साह दिखायगी सदैव काल की शोभा उसी जाति के लिये है ॥

§ "टालस्टाय" मैं विचार करता हूं कि शत वर्ष पर्य्यंत युद्ध होने रुक जायेंगे और लोग युद्ध वैसा ही याद करेंगे, जैसा कि आज कल हम पीड़ा देने का ध्यान करते हैं चकित होते हुए कि जिन्हों ने इस को चलाया था वह कैसे भद्दे थे ॥

§ "आरथर हैल्पस" जितना कोई देशस्थ जाति युद्ध करने को बुरा समझती है, उतनी ही वह उन्नत है ॥

§ "लामारटन" * युद्ध मनुष्य उन्नति को रोकता, नष्ट भ्रष्ट और शोभा रहित करता है। वह देशस्थ जातिएं जो लहू में खेल रही हैं वह पृथिवी की उन्नति को नष्ट करनेके हेतु बन रही हैं। अन्याय से हिंसा करना जैसा कि एक मनुष्य की दशा में पाप है, वैसे ही एक देशस्थ जाति की दशा में समझना चाहिये ॥

---

* इस प्रकार के लेख जो प्रत्येक नाम के आगे हैं वह उनके कथन का सार भावार्थ समझना चाहिये न कि अक्षरार्थ ॥

जिन पर ऐसा § चिन्ह किया गया है, वह सब प्रमाण "जोनाथन डॉमण्ड" की बनाई हुई पुस्तक से हैं। All these are quoted from the "Principles of Morality" by Jonathan Dymond. pp 279-285.

उक्त नामों को अंग्रेज़ी में भी लिख देते हैं ॥

W. E. Gladstone.
Sir Robert Peel.
Earl of Aberdeen.
General Grant. (President of the U. S)
Duke of Wellington.
Jeremy Bentham.
Count L. N. Tolstoi.
John Bright.
Lord Rosebery.
Canon Freemantle.
Professor Seeley.
Victor Hugo.
Arthur Helps.
Lamartine.
Benjamin Franklin.

§ "बैंजमन फ्रेङ्कलन" न कभी यह हुआ है और न होगा कि युद्ध अच्छा हो और शान्ति बुरी ॥

"डीमण्ड" की पुस्तक से सिद्ध होता है कि पिछले २५ वर्षों के मध्य में २१ लाख ८८ सहस्र पुरुषों की (व्यर्थ) हिंसा हुई और इस हिंसा की सिद्धि के लिये पश्चिमी देशों ने २६ अरब ६५ क्रोड़ ३० लाख रुपैये व्यय किये। यदि यह रुपया भूगोल में बांटा जाता तो प्रत्येक मनुष्य को २० रुपैये मिलते। इस लेखे को विचारते हुए यदि कोई कहे कि २५ वर्ष के भीतर २५ लाख पुरुष इस उन्नति के समय में वध किये जाते हैं तो १०० वर्ष के भीतर ऐसी हिंसा की संख्या एक क्रोड़ ठैरती है ॥ †

---

† १८५५ सन ई० से लेकर १८८० तक २५ वर्ष होते हैं और इस काल में निम्न लिखित युद्ध हुए जिन में निम्न लिखित व्यय हुआ और उक्त संख्या मनुष्य हिंसा की हुई ॥

युद्ध का नाम.	जो मारेगए वा घाव खाकर मरे.	व्यय.
करीमिआकायुद्ध	७ लाख ५० सहस्र	३ अरब ४० क्रोड़
इटली का युद्ध	४५ सहस्र	६० क्रोड़ रु०
शलिसविग	३ सहस्र	७ क्रोड़ रु०
उत्तरी (अमेरीका)	२ लाख ८० सहस्र	९ अरब ४० क्रोड रु०
दक्षिणी (अमेरीका)	५ लाख २० सहस्र	४ अरब ६० क्रोड़ रु०
परशिया आदि	४५ सहस्र	६० क्रोड़ ६० लाख रु०
मैकसीको आदि	६५ सहस्र	४० क्रोड़
फ्रेङ्को जर्म्मन	२ लाख २५ सहस्र	५ अरब

यह व्यर्थहिंसा जो कि भौतिकउन्नति करा चुकी है कोई निर्बलों वा दीनों की रक्षा के हेतु नहीं हुई। यह युद्ध रुक सकते थे यदि सब लोग ईश्वर भक्त होते।

यूरोप के प्रसिद्ध देशों का युद्ध तथा विद्या सम्बन्धी व्यय एक वर्ष का एक * पुस्तक में दिया हुआ है, जिस से विदित होता है कि १६ क्रोड़ ३८ लाख पौंड सेना के निमित्त और २ क्रोड़ ४१ लाख ८५ सहस्र पौंड विद्या पढ़ने के निमित्त एक वर्ष में व्यय हुआ था। यदि हम यह कहें कि १६ क्रोड़ पौंड, सेना और २ क्रोड़ विद्या के निमित्त व्यय हुए तो इस का अर्थ यह है कि विद्या की अपेक्षा आठ गुणा युद्ध से प्रेम लोगों को है।

अमेरिका जो कि यूरोप से अधिक उन्नत कहाजाता है उस का एंक वर्ष में सेना से अधिक विद्या में व्यय होता है। जहां यूरोप का उक्त व्योरा दिया हुआ है वहां अमेरिका का भी दिया हुआ है, जिस से विदित होता है कि १ क्रोड़ ८६ लाख पौंड विद्या के और ८४ लाख सेना के निमित्त एक वर्ष में व्यय हुए थे।

रूसटरकश	२ लाख २५ सहस्र	२ अरब १० क्रोड़
जूलुअफ़गानस्थान	४० सहस्र	३० क्रोड़

२१ लाख ८८ सहस्र जो मरे।

२६ अरब ६५ क्रोड़ ३० लाख रुपैया खर्च।

* Reminiscences English and American by Amrita Lal Roy Part I.

पश्चिम के एक महात्मा कवि के वचनानुसार यदि वह धन जो सेना आदि में व्यय होता है **धर्म उपदेश** के निमित्त व्यय किया जाए तो फिर सेना की आवश्यकता ही क्यों पड़े * ।

भौतिक उन्नति का यथार्थ अन्तरीय रूप हमने देख लिया । इस उन्नति को हम भौतिक आदर्शधारी ही पाते हैं । जिसके पास भौतिक पदार्थ हों, वही पुरुष इस में महान् पद को प्राप्त हो सकता है इस में शास्त्रधारी, शस्त्रधारियों को नमस्कार करते हुए दिखाई देते हैं । परोपकारी, शुद्धाचारी, आत्म बलधारी इसी में पागल समझे जाते हैं । विषय लम्पट, भौतिक धन स्वर्ण आदि रखते हुए पूजा को प्राप्त हो रहे हैं । जिस के पास भौतिक धन है उस के लिये ही मान, आदर, पदवी, डिगरी और शोभा है । चारों ओर भौतिकराजेश्वरी लक्ष्मी के ही स्तोत्र पाठ हो रहे हैं ; लोग सत्य. हृदय से भौतिक आदर्श के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करने की पाठमात्र से नहीं किन्तु पुरुषार्थ द्वारा, दो काल तो क्या, पल पल में सच्ची प्रार्थना करते हैं । इसी की उपासना का प्रत्यक्ष फल, हिंसा से सर्व विषय भोग सामग्री की प्राप्ति है । भौतिक उन्नति एक मात्र अपने शिर पर जड़ आदर्श धारण किये

---

* " Truly does " Longfellow " say ":—
" Were half the power that fills the world with terror,
Were half the wealth bestowed on camps and courts,
Given to redeem the human mind from error,
There were no need of Arsenals nor forts. "

हुए मनुष्य मात्र को अपनी शरण आने के लिये निमन्त्रण दे रही है ॥

प्राचीन समय की वैदिक उन्नति इसके विपरीत थी। उस आस्तिक उन्नति में एकमात्र ईश्वर ही लोगों का आदर्श था। उस ईश्वर आदर्शधारी उन्नति के समय ईश्वरीय स्तुति, प्रार्थना, और उपासना के करने वाले ब्रह्म-ऋषि ही सर्व उत्तम, मान और पदवी को प्राप्त होते थे। उस समय जिसके पास जितना ईश्वरीय उपासना रूपी **तपस्या** धन होता था, उतना ही वह मान को प्राप्त होता था। परोपकार, शुद्धाचार, आत्म बल उस समय पूजनीय थे। ईश्वरीय आज्ञा का धारण अर्थात् **धर्म्म** उस उन्नति का आधार था। उस उन्नति की गोद में पले हुए ऋषि मुनि कोपीनधारी होते हुए भी मुकटधारी राजाओं से पूजे जाते थे। उसी समय में जनकादि राजे ऋषियों की शरण लेते थे। उसी समय भौतिक पदार्थ आत्मा के साधन और सेवक बनाए गये थे। नाना विध कला यन्त्र आत्मोन्नति के सहायकारी थे न कि बाधक। धन उपार्ज्जन करना उस समय आदर्श धारण करना न था किन्तु आदर्श रूपी सच्चिदानन्द की प्राप्ति का साधन था। साध्य एक मात्र ईश्वर और शेष सब साधनवत् थे। ब्रह्म धन का स्वामी तपस्वी ब्राह्मण, चक्रवर्त्ती क्षत्री से अधिक माननीय था। थोड़ा ही काल हुआ है कि एक आत्म बलधारी दण्डी सन्यासी ने सिकन्दर से भौतिक उपासक के आत्मा को पराजय किया था। आज

कल तो लोगों को मरण पर्य्यन्त धन बटोरने के विना और कोई काम नहीं सूझता, परन्तु उस समय सांसारिक धन की चिन्ता से रहित हो कर आयु का अर्द्धभाग वह वानप्रस्थ और सन्यास के निमित्त अर्पण करते थे। उस समय मनुष्य को भूख का भय न था। प्राणी मात्र दुःखों से रहित आनन्द की जय जय गाता था। वही समय था जब कि बलवान निर्बलों की रक्षा, न कि हिंसा करते थे। उसी उन्नति के आदि में **स्वस्ति** और अन्त में **शान्ति** दृष्टि पड़ती थी। उसी के माथे पर " **मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे** " स्वर्णमयी अक्षरों में शोभा दे रहा था। उसी समय प्रत्येक मनुष्य को सायं और प्रातः यह प्रतिज्ञा धारण करनी पड़ती थीः—

" **यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः** "

उसी समय दो काल सन्ध्या न करने वाला, मनु महाराज की आज्ञानुसार द्विज पदवी से कुछकाल पृथक् किया जाता था। परमात्मा के प्रेम प्रवाह * से नित्य प्रेम बल धारण करते हुए

* श्रीमान् महात्मा मुन्शीराम जी प्रधान आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने अपनी पुस्तक " आर्य्यसमाज की भावी दशा " (पृ० ७) में उत्तम प्रकार से दर्शाया है कि केवल अनन्त अनादि परमात्मा के योग से ही मन पर शुभ संस्कार चिरस्थायी रह सकते हैं, ससीम भौतिक पदार्थ आत्मा को बल नहीं दे सकते ॥

" The Future of the Arya Samaj " By Mahatma Munshi Ramji President, Arya Pratinidhi Sabha Punjab.

योगी ब्राह्मण कभी किसी मनुष्य से घृणा वा ईर्षा द्वेष नहीं कर सकते थे ॥

दुर्भिक्ष की आपत्ति में प्रेमादि आत्मिक गुणों को लोग भूल जाया करते हैं। भाई, भाई से वैर करता है। पत्नी पति को तिलांजली देती है। पति, पत्नी को जूतियां लगाता है। दुर्भिक्ष काल में एक, दूसरे की रोटी छीनना ही कर्तव्य जानता है। क्या यह अवस्था सचमुच भौतिक उन्नति की नहीं हो रही ? क्या भौतिक उन्नति के पुजारी एक दूसरे के भोजन ग्रास को नहीं छीन रहे ? क्या भाई, भाई का शिकार नहीं खेल रहा ?

क्या इस समय धर्म अथवा ईश्वर उपासना की अनावृष्टि से, आत्मिक दुर्भिक्ष-काल नहीं हो रहा ? आवश्कयता है कि इस दुर्भिक्ष अवस्था को दूर करने वाली उपासना रूपी वर्षा दग्ध भूगोल को शांत करे। दुर्भिक्ष के स्वरूप वाली वर्तमान उन्नति को एक मात्र उपासना ही दूर कर सकती है। इस ब्रह्मोपासना रूपी वर्षा के अभाव से ही पृथिवी वैर अग्नि से जलकर, जलाने वाली श्मशान भूमि बन रही है। कोई उपाय विना उपासना के इस **पृथिवी को स्वर्गधाम** बनाने का नहीं है। रक्त नद बहाने वाले, रक्त की दुर्गन्धी से अब घृणित हो रहे हैं। पश्चिमी देशों ने अनुभव कर लिया, कि मनुष्य हिंसा का मूल कारण आत्मिक है न कि भौतिक। भौतिक शस्त्र, मनुष्य हिंसा के मूल कारण दुष्ट इच्छा को रोक नहीं सकते।

भौतिक पदार्थ क्योंकर चेतन आत्मा की इच्छा को रोक सकें ? तलवारें हमारे मन को कैसे जीत सकें ? शस्त्र शिर को काटते हुए मन को बेधन करने के समर्थ नहीं हैं। मनुष्य हिंसा की मूल कारण दुष्ट इच्छा की वैररूपी अग्नि, केवल ईश्वर **उपासना के शान्त जल** से ही बुझ सकती है। भौतिक पदार्थ, भौतिक पदार्थों की काया पलटा सकते हैं। आग लोहे को अग्निवत् बना सकती है, आग जल को उष्णता दे सकती है, परन्तु कोई भी भौतिक पदार्थ चेतन आत्मा की काया नहीं पलटा सकता। जल आत्मा के साधन शरीर को शान्त करता हुआ आत्मा को शान्त करने के सामर्थ्य नहीं है, अग्नि निराश आत्मा में उत्साह नहीं दे सकती। आत्मा की परम–आत्मा ही काया पलटा सकता है। एक क्रोधित आत्मा, दूसरे जीवात्मा को क्रोध अग्नि से युक्त कर सकता है। एक योगी पुरुष का शान्त आत्मा एक भोगी पुरुष के क्रूर आत्मा में शान्ति प्रवेश कर सकता है। जब यह बात है, तो क्या मनुष्य का अल्पज्ञ दुष्ट इच्छा के धारण करने वाला आत्मा सत्‌चित्‌आनन्द स्वरूप परमात्मा के योग से शुद्ध और निर्मल नहीं हो सकता ? परमात्मा के योग से आत्मा की काया पलट जाती है, इस की मनुष्य हिंसा करने और भाइयों के भोजन ग्रास छीननेवाली, रक्त नद बहाने और भौतिक शस्त्रों से न रुकने वाली दुष्ट इच्छा ईश्वरीय इच्छा के योगसे " **शिव संकल्प** " रूप में बदल जाती है। काटने वाला लोहा, बिजली के योग से प्रेम रूपी आकर्षण

से युक्त हो जाता है प्राणियों के दलन करने वाला मन ईश्वर उपासना से प्रेममयी होकर कल्याणकारी हो जाता है। उपासना के करने वाला, परोपकार रूपी सुगंधी को धारण करता हुआ फूल के सदृश उसको जगत् में फैलाता है।

भौतिक उपासक प्राणियों को प्राणों से रहित करना आवश्यक समझता था, इस के विपरीत ब्रह्मोपासक अग्निहोत्रादि **देवयज्ञ** प्राणियों के प्राणों की रक्षा करने के लिये नित्य रचता है। वह प्राणियों के सुख के साधन जलवायु (आबो-हवा) को शुद्ध करता हुआ उनकी रक्षा का निमित्त बनता है। वह विष्टा की दुर्गन्ध को हटाने के लिये सुगन्धित पदार्थ हवन कुण्ड में डालता है। वह हवन कोठरी में किवाड़ बन्द कर के नहीं करता, किन्तु खुले स्थान में करता हुआ प्राणी मात्र को उस से लाभ पहुंचाना चाहता है।

ब्रह्मोपासक देव ऋषि और माता पिता आदि पितृयों की सेवा के लिये * **पितृयज्ञ** आरम्भ करता है। नाना विध उत्तम

---

* स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश में देव तर्पण आदि के विषय में पृष्ठ ९८ पर उत्तम प्रकार से लिखते हैं। उसके अनुसार देव तर्पण के भागी चारों वेदों के जानने वाला ब्रह्मा नामी ब्राह्मण १, उसकी स्त्री ब्राह्मणी देवी २, उस के पुत्र ३, वा शिष्य, उसके गण अर्थात् सेवक ४, यह सारे हैं॥

ऋषि तर्पण के भागी मरीचीवत् पढ़ाने वाला ऋषि १, उसकी ऋषि पत्नी २, उसका पुत्र ३, वा शिष्य उसके गण अर्थात् सेवक ४, हैं।

पितृ तर्पण के भागी सोमसद १, अग्निष्वात्ता २. बर्हिषद ३, सोमपा हविर्भुज ५, आज्यपा ६, सुकालिन ७, यम ८, पिता ९, दादा १०,

भोजन द्वारा वह सत्यवादी ब्राह्मण देव की तथा विद्या पढ़ाने वाले ऋषि महात्मा की पूर्ण तृप्ति करता है। अपने पिता पितामहा आदि विद्यमान पितृयों की वह श्राद्ध और तर्पण द्वारा सेवा करता हुआ, अपने शिर से पितृ ऋण उतार कर कृत्य कृत्य होता है॥

ब्राह्मण, ऋषि तथा माता पिता आदि की सेवा करते हुए ब्रह्मोपासक अपने भोजन भण्डार से कुत्ते आदि प्राणियों तक को अन्न दान करता है। आज कल की तरह वह उनको विष की गोलियां दे कर मारना नहीं चाहता किन्तु उनकी रक्षा करता है। ईश्वर आदर्श धारी उन्नति के समय कोई भी किसी निर्धन मनुष्य अथवा रोगी को भूख से पीड़ित नहीं देख सकता। निर्धन वा रोगी की रक्षा करने के लिये ब्रह्मोपासक **भूतयज्ञ** रचता है। प्राणी मात्र की रक्षा करने वाले के घर से काक, कृमि आदि भी भोजन को प्राप्त होते हैं॥ *

इस प्रकार प्राणी मात्र को भूख के भय से रहित करते हुए ब्रह्मोपासक सूर्य्यवत् विद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले सन्यासी, अतिथी की सेवा के लिये **नृयज्ञ** रचता है। वह जानता है कि संसार से हिंसा पाप को हटाने वाले उपदेशक हैं

पड़दादा ११, माता १२, दादी १३, पड़दादी १४, स्वपत्नी १५, भगिनी १६, संबन्धी १७, और स्वगोत्र १८, हैं।

* बली वैश्वदेवयज्ञ के विषय में लिखते हुए स्वामी जी भूमिका के पृ० २७१ पर लिखते हैं कि "सब प्राणियों को मनुष्यों से सुख होना चाहिये"।

न कि भौतिक शस्त्र । वह पृथिवी को स्वर्ग धाम बनाने वाले उपदेशकों की सेवा अपनी शिव संकल्प की पूर्त्ति का साधन मानता है । उसके जीवन शास्त्र में हिंसा नहीं किन्तु रक्षा, ईर्षा नहीं किन्तु प्रेम, घृणा नहीं किन्तु **सेवा** विद्यमान है ॥

वह सच्ची उन्नति जो इस प्रकार मनुष्यों को सुख सिद्धि कराती थी आज ब्रह्मयज्ञ के अभाव से नष्ट हो गई है । इस उन्नति का प्रचार प्राचीन समय में आर्य्यावर्त्त में ही न था किंतु ईरान, चीन, मिश्र, यूनान, हरिवर्ष, पाताल आदि देशों अर्थात् सर्वत्र भूगोल पर लाखों वर्ष पर्य्यंत रह चुका है ॥

आज कल एक गृहस्थी का न्यून से न्यून मासिक व्यय १०० रु० होना चाहिये । देवयज्ञ करने के लिये एक मनुष्य को न्यून से न्यून १६ आहुतियां देनी चाहियें और प्रत्येक आहुति ६ माशे की हो तो १॥ छटांक से ६ माशे ऊपर सामग्री एक वेर चाहिये । इस में १ छटांक तो घी होगा और शेष अन्य सामग्री । दो काल के लिये ३ छटांक और एक तोला सामग्री चाहिये । इस लेखे से एक मास के लिये ६ सेर सामग्री हुई । जिस में ४ सेर के घी होगा और शेष सामग्री २ सेर से अधिक। इस का मोल ४ रु० समझ लीजिये,

(२) पलाश आदि की लकड़ियों का मोल भी बीच में ही समझ लो। यदि उसके गृह में न्यून से न्यून ४ जन भी होम करने वाले हैं तो उसका इस यज्ञ के लिये समग्र व्यय १६ रु० समझ लो ॥

(३) पितृयज्ञ में न्यून से न्यून उसको देव, ऋषि, माता, पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री, दादा, दादी, भृत्य और अपनी पालना करनी होगी यदि ५) एक जने का भोजन व्यय माना जाय तो ५५) समग्र व्यय पितृयज्ञ का समझ लो ॥

वैदिक उन्नति का आधार केवल ब्रह्म पर ही था। यदि हम चाहते हैं कि यह पृथिवी जो कि प्राचीन समय में स्वर्गधाम थी, पुनः स्वर्ग बन जाए, तो हमें ब्रह्मोपासना के बीज को हृदय स्थल में बोने का पूर्ण पुरुषार्थ करना चाहिये। भूगोल पर आस्तिकपन पुनः स्थापित करने के लिये आओ हम पुरुषार्थ करने की मन से प्रतिज्ञा करें। सज्जन जनो पुरुषार्थ से उस समय को प्रत्यक्ष कर दिखाओ जिस में कि राम से सपूत धर्म्म पालने के लिये जड़ पदार्थों को लात मारते थे, जिस समय कि विश्वामित्र से वीर क्षत्रत्व धर्म को तुच्छ समझते हुए ब्राह्मण बनना चाहते थे। **जब कि लोग भूगोल को एक देश, मनुष्य मात्र को एक जाति मानते हुए भूगोल** के सर्व स्थानों में आस्तिकपन स्थापित करने के लिये उपदेश शस्त्र लिये हुए आत्मिक विजय पाते थे। जिस समय कि ऋषि मुनि वेद के एक एक मन्त्र को जीवन में सिद्ध करते हुए मृत्यु त्रास से रहित हो जीवन मुक्त कहलाते थे। जब कि अरबाग्नि (बारूत) पहाड़ों में सन्यासियों से आत्मिक वीरों के लिये रासते बनाने का काम करती थी। जब कि वैर अग्नि को ईश्वर प्रेम से नित्य शान्त किया जाता था। जिस समय के ही

---

(४) ६) मासिक व्यय भूतयज्ञ का न्यून से न्यून समझ लो ॥

(५) ६) ही नृयज्ञ का व्यय समझ लो ॥

(७) १७) सब के वस्त्रादि का मिश्रित व्यय लगाने से १६+५५+६+६+१७=१००) समग्र व्यय होता है। इस लेख से यह नहीं समझना चाहिये कि उस समय भी १००) ही लगता था।

शेष प्रभाव की "मैगसथिनीज़ *" से यात्री साक्षी दे रहे हैं। जब कि सांसारिक उन्नति एकमात्र ब्रह्म की आज्ञा पालन के निमित्त थी, उस समय, हां उस स्वर्ग के सच्चे समय को लाने के लिये एकमात्र ब्रह्म का सच्चा आदर्श, भूली भटकी जली भुनी दुःखों से पीड़ित भूगोल पर, पुनः स्थापित करते हुए, सत्य उपदेश से ब्रह्मनाद बजाते और जड़ उपासकों को जगाते हुए, सर्वोत्तम ब्रह्मयज्ञ को रच, आत्म समर्पण रूपी आहुति उस में डाल कर दिखा दो॥

क्या सन्ध्या दो काल करनी चाहिये ?



मेरिकाके योगी एण्डरोजैक्सनडेवस अपनी पुस्तक "हारमोनिया" भाग चतुर्थ में इस बात को सिद्ध करते हैं कि सायं और प्रातः दो ही ऐसे काल हैं जब के मनुष्य के शिर में † प्राण और ¶ रयिविद्युत् समता की दशा में होती है। ज्यूं ज्यूं सूर्य्य चढ़ता जाता है प्राणविद्युत् बढ़ती जाती है यहां तक कि दिन के १२ बजे काम कराने वाली यह विद्युत् पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो, दोपहर ढ़लते ही ढ़लनी आरम्भ होती है और रयिविद्युत् बढ़ने लगती है, यहां तक कि सूर्य्य अस्त होने के समय, शिर और शरीर के भीतर

---

* Megasthenes.

† प्रश्नोपनिषद में इस का वर्णन है।

¶ प्राण = Positive. रयि = Negative.

दोनों प्रकार की विद्युत् समता की दशा में फिर हो जाती हैं। ज्यूं ज्यूं अन्धकार बढ़ने लगता है, रयिविद्युत् बढ़ती बढ़ती रात्री के १२ बजे पूर्ण अवस्था कों पहुंच जाती है। इस के पश्चात् फिर यह घटनी आरम्भ होती और प्राण विद्युत् बढ़ने लगती है, यहां तक कि सूर्य्योदय के समय दोनों प्रकार की विद्युत् फिर समता को प्राप्त होती हैं ‡ वह ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि आत्मिक शक्तिएं रातके १२ बजे से लेकर दिनके १२ बजे तक कार्य्य करने के योग्य होती हैं। शरीर सम्बन्धी शक्तिएं दिन के १२ बजे से लेकर रात के १२ बजे तक स्वाभाविक ही कार्य्य करने के योग्य हैं और यही समय शारीरिक व्यायामादि श्रम करने के लिये अधिक हितकारी है। सायं और प्रातः दो ही ऐसे काल हैं जब कि प्राण और रयि शक्तिएं समता की दशा में हो जाती हैं॥

इसी प्राण और रयि का दूसरा नाम सत और तम है। प्रातः ओर सायं काल सत और तमोगुण की साम्यावस्था होती है। सत और तम को ही प्रकाश और अन्धकार कहते हैं। इस लिये ऋषियों का वचन कि सन्ध्या काल प्रकाश और अन्धकार की सन्धी वेला का नाम है, कैसा सत्य प्रतीत होता है ? एक तरफ तो सृष्टि के राज्य में प्रकाश और अन्धकार की सन्धी, सन्ध्या समय होती है, दूसरी तरफ हमारे शरीरों में सत और तमोगुण की सन्धी होने से समता अर्थात् शान्ति होती है। यह समता

‡ Harmonia. Vol. IV, Entitled the "Reformer" By Andrew Jackson Davis.

शरीर को केवल दो ही काल में पूर्ण रीति से प्राप्त हो सकती है। प्रातः काल होते ही सर्व पशु प्राणि अपने अपने कार्य्य में प्रवृत्त होने लगते हैं, उसी समय हमारी शक्तियें भी काम करने के लिये प्रस्तुत होती हैं। * रात भर के विश्राम के पश्चात् नये जन्मे हुए बालक की तरह शरीर विश्राम कर शुद्ध, और निर्मल हो साम्यावस्था को प्रातः काल प्राप्त होता है। वह समय है कि शिर और इन्द्रियों के शिरोमणि मनको ईश्वर के चिंतन और योग साधन द्वारा उसकी प्राप्ति में लगाया जाए। इसी लिये ब्रह्म मुहूर्त्त अर्थात् रात्रि के चतुर्थ प्रहर में उठ, शौच आदि से निवट, शुद्धि के हेतु स्नानादि अवश्य करने के पश्चात् ही सूर्य्योदय होने से कुछ पूर्व सन्ध्या उपासना में निमग्न होना चाहिये। रात के १२ बजे से लेकर, दिनके १२ बजे तक का समय सतोगुण प्रधान होने से पठनपाठन के लिये उपयोगी है, इस लिये प्रातः सन्ध्या के पश्चात् विद्याभ्यास करना ठीक है।

---

* "प्रोफ़ैसर बेन" एम. ए. एल. एल. डी. का वचन है कि एक आरोग्य पुरुष प्रातःकाल नये बल पराक्रम से युक्त हो कर जागता है........आध्यात्मिक और संस्कार ग्रहण करने वाली शक्तिएं प्रातःकाल अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था में होती हैं........सायं काल आध्यात्मिक और कायिक आलस्य आरम्भ हो कर आरोग्य प्रदायिणी सुषुप्ति का रूप बन जाता है........स्मरण शक्ति शारीरिक अवस्था के संग संग बढ़ती घटती है, जब हम नये बल से युक्त हों तो यह उत्तम और जब हम थके हारे हों तो धीमी पड़जाती है"॥

"Mind and Body" by Alexander Bain, M.A.LL.D. page 9.

मध्यान्ह (दो प्रहर) के पश्चात् गूढ़ और सूक्ष्म विचार तथा विद्या कण्ठ करने के कार्य्य को छोड़ कर, साधारण धन्दों अथवा न्यून विचार सम्बन्धी लौकिक व्यवहारों तथा पत्र लिखने आदि की क्रिया को करना हित कर है। सायं काल होने से पूर्व ही सब कार्य्यों को समाप्त कर, शौच आदिसे निवट आचमन द्वारा शुद्ध हो फिर सायं सन्ध्या अर्थात् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना में निमग्न होना चाहिये ॥

सायं काल की सन्ध्या के पश्चात् पढ़ने, विचारने का समय नहीं है, क्योंकि सृष्टि के राज्य में अन्धकार और शरीर में तमो-गुण प्रधान हो रहा है। प्राचीन समय में विद्यार्थी वेद संहिता ब्रह्ममहूर्त्त अथवा प्रातःकाल में कण्ठ किया करते थे, परन्तु उस समय कोई ब्रह्मचारी रात को दीपक जला कर तमोमय प्रधान काल में संहिता कण्ठ नहीं करता था। रात्रि शयन के लिये है न कि आत्मिक विचार और पढ़ने के लिये। तमोमय प्रधान कर्म-इन्द्रियां विश्राम द्वारा इस समय बल तथा शुद्धि को प्राप्त हो रही हैं। गर्भाधान जो कि तमोमय कर्मइन्द्रियों का कार्य्य है, रात्रि में करना उचित माना गया है। ऋषियों के समय में * रात्रि के स्कूल इसी लिये नहीं होते थे। रात्रि और अन्धकार में विशेष काम करने वाले निशाचर समझे जाते थे। कैसा शोक है कि वर्त्तमान समय में हम तम प्रधान रात्रि में जागरण करने

* Night Schools.

से तामसी बन रहे हैं और यही एक हेतु है कि हम ब्रह्ममहूर्त्त के देव काल में जाग नहीं सकते । सत्वप्रधान ब्रह्ममहूर्त्त अर्थात् रात के चतुर्थ प्रहर में जागने के लिये आवश्यक है कि हम जहां तक हो सके रात होते ही सोया करें । सर्व प्रकार के विद्यार्थियों को तो अवश्य ही ब्रह्ममहूर्त्त में उठना चाहिये, परन्तु कैसा अपशोच है कि निर्दयी परीक्षा के लिये घोटा लगाने वाले विद्यार्थी रात के १० अथवा ११ बजे तक तमस में जागने से ब्रह्ममहूर्त्त में जाग नहीं सकते । नाटक, रासलीला, जो कि मनोविलास के साधन माने गये हैं, हम को सत्व प्रधान ब्रह्ममहूर्त्त में उठने के अयोग्य बना देते हैं । इस लिये ब्रह्ममहूर्त्त में सुलाने वालों की संख्या इस प्रकार है

* (१) यूनीवर्स्टी की निर्दयी परीक्षाओं के लिये विशेष रात्रि जागरण करना ॥

§ (२) नाटक, रासलीला आदि को अर्ध रात्रि तक देखना ॥

पश्चिमी विद्वान् भी अब इस तामसी लीला को अनुभव करने लगे हैं । हमारे लेख को निम्न लिखित प्रमाण पुष्ट कर रहे हैं ॥

† " डाक्टर ब्रौन " कहते हैं कि " विद्यार्थी पढ़ने का काम जिस पर कि मन की एकाग्रता अवश्य लगती है बहुधा

* University examinations. § Theatres.

† J. C. Browne, M. D. L. L. D. F. R. S.

रात को करते हैं, जब कि यह हितकारी होने की अपेक्षा हानि-कारक है। दिन के पश्चात् शिर थका हुआ होने के हेतु पढ़ने विचारने के अयोग्य होता है। रात के पढ़ने से निद्रा दूर हो जाती है। निर्बलता आदि रोगों से विद्यार्थी ग्रस्त हो जाते हैं। यदि वह दिन को पढ़ते तो रोगों से सुरक्षित रहते। दिन के ९ बजे से लेकर मध्यान्ह पर्य्यंत विचार संबंधी पढ़ने आदि का काम करना उचित है वैद्यक के अनुसार पाठ को पढ़ना ऐसा काम है, जोकि स्कूल के समय गुरु की सहायता से पूर्ण होना चाहिये। ....निद्रा एक स्वाभाविक और स्वास्थ प्रदायिणी अवकाश इन्द्रियों आदि के लिये है। जो लोग आरोग्यता और उसके फल के इच्छुक हैं उन को सदैव अर्ध रात्रि के लग भग ६ घण्टों से न्यून न सोना चाहिये "॥

* "'डाक्टर एलिनसन" अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि "लोग रात को देर से सोते और प्रातःकाम के लिये उठते हैं, वह अपनी निद्रा न्यून करने से आरोग्यता का नष्ट कर लेते हैं, और फिर चकित हो कर कहते हैं कि हम क्यों पचास वर्ष की आयु में बूढ़े और निर्बल हो गये। यदि युवा पुरुष सावधानी से वर्तें तो बुढ़ापा ७० वर्ष सें पूर्व कभी न आवे "॥

हकीम, वैद्य आदि दोनों सन्ध्या के काल में ही रोग को भली प्रकार निदान कर सकते हैं। वह औषधी रोगी को उन्ही

* Hygienic Medicine By T. L. Alhinson L. R. C. P.

दो कालों में प्रायः पीने को बतलाते हैं। जब रोगी शरीर इन ही दो कालों में प्रायः औषध पान करने से बलवान् हो सकता है, तो क्या आत्मा के रोग परमात्मा की उपासनारूपी औषधी से भली प्रकार निवारण करने के लिये आत्मिक वैद्य यह ही दो काल उत्तम नहीं बतलाते ?

प्रातः और सायं दो ही ऐसे काल हैं जब कि मनुष्य अपने कर्तव्य की प्रतिज्ञा और पड़ताल कर सकता है। प्रातः को ईश्वर उपासना में निमग्न होने के पश्चात् ही मनुष्य ईश्वरीय गुणों को दिनभर जीवन में सिद्ध करने की प्रतिज्ञा धारण कर सकता है, और सायंकाल को उपासना के पश्चात् अपने कृत कर्म को पड़-ताल करता हुआ देख सकता है कि मेरा जीवन उन्नति कर रहा वा गिर रहा है। यही दो काल हैं जब कि सृष्टि के रागी अपनी अपनी मीठी बोलियों और रसीली सुरीली रागनियों से मन को आल्हादिक करते हुए वृक्षों में सावन के हिण्डोले झूल झूल मनुष्य को परम पिता के धन्यवाद गाने की स्वाभाविक प्रेरणा करते हैं। प्राचीन समय में दो काल की ही सन्ध्या सब लोग करते थे। रामायण बालकाण्ड तीसवें सर्ग के श्लोक दूसरे तीसरे में इस का उदाहरण मिलता है॥

"प्रातः होते पर विश्वामित्र महा मुनि पत्रों के विस्तर पर सोते हुए उन दोनों को बोले किः—

"कौशल्या सुप्रजाराम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नर शार्दूल कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्॥ २॥

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ।" ॥ ३ ॥

(अर्थ) हे कौशल्या के सपूत राम प्रातःकाल की सन्ध्या का समय है । उठो श्रेष्ठ नर और प्रातःकाल का देवकृत करो, वह दोनों (राम और लक्ष्मण) श्रेष्ठ नर उस महर्षि के परम उदार वचन को सुन कर स्नान कर के परम जप (गायत्री) को जपने लगे ।

" कुमारावपितां रात्रिमुषित्वा सुसमा हितौ ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वांसन्ध्यामुपास्य च ॥ ३१ ॥
प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च ।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥ ३२ ॥
(बाल० १९ सर्ग, श्लोक ३१, ३२)

अर्थात् वह दोनों कुमार (राम लक्ष्मण) भी रात्रि सोने के पश्चात् सावधान हुए । प्रातःकाल उठ कर शुद्ध हुए पश्चात् सन्ध्या और परम जाप (गायत्री) को नियम से समाप्त करके ऐसे विश्वामित्र को जो अग्निहोत्र समाप्त करके आसन पर बैठा था नमस्कार किया ।

" कृतार्थेऽस्मि महाबाहो कृतं गुरु वचस्त्वया ।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ।
सहिरामं प्रशस्यैवंताभ्यां सन्ध्यामुपागमत् " ॥ २६ ॥
(बाल० सर्ग ३०, श्लोक २६)

(विश्वामित्र जी कहने लगे) हे बड़ी भुजा वाले मैं कृतार्थ हूं, क्योंकि तुमने गुरु का वचन माना, हे वीर, बड़े यश वाले इस सिद्ध आश्रम के नाम को तू ने रख दिखाया । वह इस प्रकार राम की प्रशंसा करके उन दोनों के साथ सन्ध्या उपासना करने लगा (ऊपर राक्षस के मारने का वर्णन है इस लिये यह **सायं सन्ध्या** समझनी चाहिये) ।

" अभिगच्छामहे सर्वे शुचयः पुन्यमाश्रमम् ।
इहवासः परोऽस्माकं सुखं वत्स्यामहे निशाम् ॥ १७ ॥
स्नाताश्च कृत जप्याश्च हुत हव्या नरोत्तम ।
तेषां सम्वदतां तत्र तपोदीर्घेण चक्षुषी " ॥ १८ ॥

(बाल० स० ३० श० १७, १८)

अर्थात् अब हम पवित्र आश्रम को चलते हैं, जहां चल कर सुख पूर्वक स्नान किये हुए और जाप (गायत्री) किये हुए और **हवन** किये हुए हम सब वहां रात्रि निवास करेंगे । वह दोनों महावीर तपोधन विश्वामित्र को नमस्कार कर परस्पर प्रेम पूर्वक नमस्कार करके चलने के लिये प्रस्तुत हुए ॥

" सतं वृक्षं समासाद्यसन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठ इति हो वाच लक्ष्मणम् " ॥ १ ॥

(आयोध्या काण्ड स० ५३ श० १)

अर्थात् " उस वृक्ष को प्राप्त हो और **सायंकाल की संध्या** कर के रामचंद्र लक्ष्मण जी को ऐसा कहने लगे " ॥

" स्वःकार्य्यमद्यकुर्वीत पूर्वान्हे चापरान्हिकम् ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य नवा कृतम् " ।

* महाभारत शान्ति पर्व के उक्त श्लोक में प्रातः कालकी सन्ध्या को § पूर्वान्ह और सायंकाल की सन्ध्या कों ‡ अपरान्ह कहा गया है ।

" उत्तमः तारकोपेता मध्यमः लुप्ततारका ।
अधमः सूर्य्योपेता प्रातर्संध्या प्रकीर्तिताः ॥
उत्तमः सूर्य्योपेता मध्यमः लुप्ततारकः
अधमः तारकोपेता सायं संध्या प्रकीर्तिताः " ।

(आन्हिक सूत्रावली)

उक्त श्लोकों में उस प्रातः संध्या को जो तारे होने पर की जाए उत्तम, तारे छिपने पर की जाए मध्यम और सूर्य्य चढ़ जाने पर की जाए अधम कहा है । वह सायं सन्ध्या उत्तम कही है जो सूर्य्य होते ही की जाए, वह मध्यम है जो सूर्य्य छिप जाने पर की जाए और वह अधम है जो तारे चढ़ जाने पर की जाए ॥

मनुस्मृति में भी दो काल की ही सन्ध्याका वर्णन है । उक्त लेख से विदित है कि प्राचीन समय में मनुष्य मात्र के पितृदोकाल ही संध्या किया करते थे । घड़ियें चाबी के न लगने

* " जीवनयात्रा " बनाई हुई श्री पण्डित देवीदयालु जी उपदेशक आ० प्र० निधिसभा पञ्जाब ॥ § A. M. ‡ P. M.

से ठीक समय बोधन कराने से रुक सकती हैं, परन्तु सृष्टि, संन्ध्या के दोनों कालों पर रंग बदलती हुई निर्भ्रान्त रीति से सन्ध्या समय दर्शा देती है। घटाटोप बादल छा जाने से कभी कभी दिन रात का भेद नहीं रहता पहाड़ों के ऊंचे स्थलों पर कई दिन लगातार वर्षा होती रहती है, परन्तु स्वाभाविक ही पिछली रात * सतोगुण बढ़ने के साथ साथ तमोमय आलस्य की अवस्था जागृत अवस्था में बदलनी आरम्भ होती है तो सृष्टि के घड़यालिये वृक्षों में राग आलापते हुए हमें प्रातः सन्ध्या के समय का निर्भ्रान्त बोधन करा देते हैं। जब तक दिन का समय रहता है तब तक यह पक्षी अपने अपने कार्य्यों में लगे हुए पुरुषार्थ की शिक्षा प्रदान करते रहते हैं, परन्तु चाहो कितना भी बादलों का अन्धकार क्यों न हो यह सायंकाल होते ही अपने बसेरों में शयन करने को जाते हुए हमें सायं सन्ध्या का समय निश्चित करा देते हैं।

यात्रा करते हुए आप किसी देश में जाओ। घड़ी आप के साथ चाहो न भी हो, बादल शिर पर चाहे कितने ही क्यों न छा जायें, तो भी कुकटादि पक्षीगण, प्रातः और सायं सन्ध्या का समय आप को अवश्य बोधन करा देंगे। " अमेरिकन

* पिछली रात आंख इस लिये खुलने लगती है कि सतोगुण प्रधान होने लगता है। सतोगुण चेतनता का हेतु तथा तमोगुण निद्रा, अविद्या आलस्य का हेतु है।

इण्डियन " * लोग उन फलों को उत्तम समझ कर खाया करते हैं जिन को कि पक्षी चोंचें मार जायें और उन की दशा में उन के भोजन दर्शाने वाले पक्षी ही होते हैं। इस बात को छोड़ कर, हम देखते हैं कि प्रातः और सायंकाल बोधन कराने की सर्व भूगोलपर सृष्टि की नियत की हुई घड़ियां एकमात्र पक्षी ही हैं। प्रातः और सायंकाल का समय ऐसा उत्तम है कि इस को हम स्वाभाविक रीति से कभी किसी ऋतु में भूल नहीं सकते। यही समय शान्ति, आरोग्यता, समता का है, इस लिये प्रातः और सायंकाल अवश्य शुद्ध होकर महान् ब्रह्मयज्ञ के रचने का पूर्ण प्रेम से नित्य यत्न करना चाहिये ॥

आर्य्यसमाज के भूषण पण्डित गुरुदत्त जी के धार्मिक जीवन का कारण क्या था?



महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के सच्चे भक्त विद्यानिधि, तर्कवाचस्पति, मुनिवर, पण्डित गुरुदत्त जी विद्यार्थी, एम. ए. का जन्म २६ अपरेल सन् १८६४ ई० को मुलतान नगर में और देहान्त २६ वर्ष की आयु में लाहौर नगर में १९ मार्च सन् १८९० ई० को हुआ था ॥

आर्य्य जगत् में कौन मनुष्य है, जो उन की अद्भुत विद्या योग्यता, सच्ची धर्मवृत्ति और परोपकार को नहीं जानता? उन के शुद्ध जीवन उग्र बुद्धि और दंभरहित त्याग को वह पुरुष जिस ने

* American Indians.

उन को एक बेर भी देखा हो बतला सकता है। महर्षि दयानन्द के ऋषिजीवन रूपी आदर्श को धारण करने की वेगवान् इच्छा, योग समाधी से बुद्धि को निर्मल शुद्ध बनाने के उपाय, और वेदों के पढ़ने पढ़ाने में तद्रूप होने का पुरुषार्थ एक मात्र उनका आर्य्य-जीवन बोधन कराता है। अंग्रेज़ी पदार्थविद्या तथा फ़िलासोफ़ी के वारपार होने पर उन की पश्चिमी ज्ञानकाण्ड की सीमा का पता लग चुका था। जब वह पश्चिमी पदार्थविद्या और फ़िलासोफ़ी के उत्तम से उत्तम पुस्तक पाठ करते थे, तो उन को भली भांति विदित होता था कि संस्कृत विद्या के अथाह समुद्र के सन्मुख अंग्रेज़ी तथा पश्चिमी विद्या की क्या तुलना हो सकती है? एक समय लाहौर आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर उन्हों ने अंग्रेज़ी में व्याख्यान देते हुए ज्योतिष शास्त्र और सूर्य्य सिद्धान्त की महिमा दर्शाते हुए, यह वचन कहे थे, कि संस्कृत फ़िलासोफ़ी का वहां आरम्भ होता है, जहां कि अंग्रेज़ी फ़िलासोफ़ी समाप्त होती है। वह कहा करते थे कि पश्चिमी विद्याओं में पदार्थविद्या उत्तम है और यह पदार्थविद्या तथा इस की बनाई हुई कलें बुद्धि बल के महत्व को प्रकट करती हैं, इन कलों से भी अद्भुत विचारणीय पश्चिमी पदार्थविद्या के वाद हैं, परन्तु वह सर्व वाद वैशेषिक शास्त्र के आगे शान्त हो जाते हैं। वह कहते थे कि कणाद मुनि से बढ़ कर कोई भी पदार्थविद्या का वेत्ता इस समय पृथिवी पर उपस्थित नहीं है। कई बेर उन को आर्य्यस-ज्जनों ने यह कहते हुए सुना कि मैं चाहता हूं कि पढ़ी हुई

अंग्रेज़ी विद्या भूलजाऊं, क्योंकि जो बात अंग्रेज़ी के महान् से महान् पुस्तक में सहस्र पृष्ठ में मिलती है, वह बात वेद के एक मन्त्र अथवा ऋषि के एक सूत्र में लिखी हुई पाई जाती है। वह कहते थे कि जो "मिल *" ने अपने न्याय में सिद्धान्त रूप से लिखा है वह तो न्यायदर्शन के दो ही सूत्रों का आशय है। एक वेर उन्हों ने कहा कि हम एक पुस्तक लिखने का विचार करते हैं जिस में दर्शायेंगे कि भूत केवल पांच ही हो सकते हैं न कि ६४ जैसा कि वर्तमान समय में पश्चिमी पदार्थवेत्ता मान रहे हैं॥

सन् १८८९ के शीतकाल में, मैं और लाला जगन्नाथ जी उन के दर्शनों को गये। वह उस रोग से जो अन्त को उन की मृत्यु का कारण हुआ ग्रसे जाचुके थे। हम ने पूछा कि पण्डित जी आप प्रेम तथा विद्या की मूर्त्ति होने पर क्यों रोग से पकड़े गये? उत्तर में मुसकराते हुए सौम्य दृष्टि से हम दोनों को कहने लगे कि क्या आप समझते हो कि स्वामी जी की महान् विद्या और उनका महान् बल मेरी इस मलीन बुद्धि और तुच्छ शरीर में आ सकता है, कदापि नहीं। ईश्वर मुझे इस से उत्तम बुद्धि और उत्तम शरीर देने का उपाय कर रहा है, ता कि मैं पुनर्जन्म में अपनी इच्छा की पूर्त्ति कर सकूं। यह वचन सुन कर हम आश्चर्य सागर में डूब गये और एक एक शब्द पर

* J. S. Mill.

विचार करने लगे । पुनर्जन्म को तो हम भी मानते थे पर पुर्नजन्म का अनुभव और उस की महिमा उन के यह वचन सुन कर ही मन में जम गई । स्थूलदर्शी जहां रोगों से पीड़ित होने पर निराशा के समुद्र में मूर्छित डूब जाते हैं, वहां तपस्वी पण्डित जी के यह आशामय वचन कि मृत्यु के पीछे हमें स्वामी जी के ऋषिजीवन धारण करने का अवसर मिलेगा कैसे सार गर्भित और सच्चे आर्य्य जीवन के बोधक हैं ।

जब कि वह रोग से निर्बल हो रहे थे तो एक दिन कहने लगे के हमारा विचार है, कि एक व्याख्यान इस विषय पर दें कि मौत क्या है ? मृत्यु कोई * गुप्त वस्तु नहीं है । लोग मौत से व्यर्थ भय करते हैं । यह सच है कि पण्डित जी से ईश्वर उपासक और धार्म्मिक, योगाभ्यासी के लिये मौत भयानक न हो, परन्तु वह मनुष्य जो ऐसी उच्च अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ वह क्योंकर अपने मुख से कह सकता है कि मौत भयानक नहीं है ? पण्डित जी ने इस वाक्य को अपनी मौत पर जीवन में सिद्ध कर दिखाया । श्रीयुत लाला जयचन्द्र जी तथा भक्त श्रीपण्डित रैमलजी, जो बहुधा उन के पास रोग की अवस्था में रहते थे वह उनकी मृत्यु से निर्भय होने की साक्षी भली प्रकार दे सकते हैं । रोग की दशा में जब कि उन को रात को खांसी ज़ोर से आने लगती अथवा ज्वर अपना बल दिखाता, तो वह कभी भी ऐसी अवस्था में मुख से पीड़ा बोधक वचन नहीं निकालते थे, किन्तु धैर्य्य से दुःख

* Death is no mystery.

सहन करते थे, और यदि कोई पूछता कि पण्डित जी क्या हाल है ? तो केवल इतनाही कह देते कि खांसी हो रही है । एक बेर मैं रोग से ग्रसित होने के हेतु कई दिन तक पण्डित जी के दर्शनों को न जा सका । एक दिन जब मैं उन के गृह पर (स्वयं आरोग्य होने पर) गया तो उन की खाट के पास जाकर चुप चाप बैठा रहा । पण्डित जी रोगी होने के कारण दिन को सो रहे थे, इतने में जब उन की आंख खुली तो बड़ी धीमी स्वर से मुझे पूछने लगे कि आप के शरीर की क्या अवस्था है ? मैंने उत्तर दे दिया । वह निर्वल और रोग से विशेष ग्रसित होने के कारण उच्च स्वर से नहीं बोल सकते थे, तो भी उन्हों ने दोचार बातें मुझ से कीं । वह तो इस दशा में मुझ से बातें करते थे पर मेरा मन उन के अत्यन्त प्रेम को अनुभव करता हुआ यह कह रहाथा कि इन से बढ़ कर प्रेम कौन अपने जीवन से सिद्ध करके दिखा सकता है ? लोक में देखने में आता है, कि विद्वान् प्रेम से शून्य शुष्क हुआ करते हैं । काशी के पंडित तकतो ईर्षा द्वेषसे बद्ध हो कर अक्षरार्थ में अपने तुल्य पंडितों को मूर्ख सिद्ध करने में रुचि प्रकट करते हैं । एक विद्वान् दूसरे विद्वान् की प्रशंसा सुन नहीं सकता । एक उपदेशक दूसरों को ईर्षा की दृष्टि से देखता हुआ जीवन में धर्म अथवा प्रेम का लेश चिन्ह नहीं दिखा सकता, परन्तु यह बात पण्डित जी में न थी । उन को यदि विद्या बल के कारण " पण्डित " और " एम.

ए. " की पदवी मिली थी, तो प्रेम परीक्षा में उत्तीर्ण होने और प्रेम बल रखने के कारण, " एल. एल. डी. " और " महान् पण्डित " की पदवीदी जाए तो सत्य है। उन्हों ने ही अपने जीवन से सिद्ध करके दिखाया कि मनुष्य भारी विद्वान् होने पर ईर्षा द्वेष से इस समय भी रहित हो सकता है। उनको कई बेर आर्य्यसभासदों ने आर्य्य पुरुषों की प्रशंसा करते हुए सुना ॥

एक बेर लाहौर समाज की धर्मचर्चासभा में " वर्तमान समय की विद्या प्रणाली " के विषय में विचार होना था। इस वाद में कई बी. ए., एम. ए. भाई अंग्रेज़ी विद्या तथा वर्तमान समय की विद्या प्रणाली की उत्तमता दर्शानेका यत्न करते रहे। अन्त को पण्डित जी ने " **मातृमान् पितृमानाचार्य्यमान् पुरुषो वेद** " की प्रतीक रख कर एक अद्भुत और सारगर्भित रीति से उक्त वचन की व्याख्या करते हुए लोगों को निश्चय करा दिया कि अंग्रेज़ी विद्या भ्रान्ति युक्त होने से विद्या ही कहलाने के योग्य नहीं है और वर्तमान शिक्षा प्रणाली शिर से पग तक छिद्रों से भरपूर है। उन का एक वचन कुछ ऐसा था कि " Modern System of Education is rotten from top to bottom "

एक समय इसी प्रकार धर्मचर्चा के अन्त में जब कि लोग " वक्तृता " के विषय में वाद विवाद कर चुके तो पण्डित जी ने अपने व्याख्यान में यह सिद्ध किया कि सत्य कथन ही का दूसरा नाम अद्भुत वक्तृता है।

जब कभी वह आर्य्य सभासदों को अपने नाम के पीछे अपनी ज्ञाति लिखते हुए देखते तो वह रोक देते थे, यह कहते हुए कि यह ज्ञाति की उपाधि किसी गुण कर्म की बोधक नहीं किन्तु रूढ़ी है और साथ ही कहते थे कि वर्ण तो गुण, कर्म स्वभाव के अनुकूल चार हो सकती हैं।

जब कभी वह हमें सुनाते कि यूरोप मे अमुक नवीन वाद * किसी विद्या विषय में निकला है, तो अत्यन्त प्रसन्न होकर साथ ही कहते कि यूरोप सत्य के निकट आ रहा है यदि कोई उनको ही कहता कि पण्डित जी यूरोप तो उन्नति कर रहा है, तो कहते कि भाई वेद के निकट आ रहा है। सत्य नियम की उन्नति कोई क्या कर सकता है? क्या दो और दो चार का कोई नवीन वाद उल्लंघन कर सकता है, कदापि नहीं। वह कहते थे कि वर्तमान यूरोप योगविद्या से शून्य होने का कारण सत्य नियमों को निर्भ्रान्त रीति से नहीं जान सकता। इसी लिये यूरोप में एक वाद आज स्थापित किया जाता और दश वर्ष के पीछे उस को खण्डन करना पड़ता है। यदि योगदृष्टि से यूरोप के विद्वान् युक्त होते, तो जो वाद आज निकालते वह कभी परसों खण्डन न होते। उन का कथन था कि विद्या विना योग के अधूरी रहा करती है। आर्ष ग्रन्थ इसी लिये पूर्ण हैं, कि उन के कर्त्ता **योगी** थे। अष्टाध्यायी इसी लिये उत्तम है कि महर्षि पाणिनि **योगी** थे। दर्शन शास्त्र के कर्त्ता अपने अपने विषय का

* Theory.

इस लिये उत्तम वर्णन करते हैं कि वह **योगी** थे। कई मित्र उन के यह बचन सुन कर कह देते कि योगी तो किसी काम करने के योग्य नहीं रहते। इस शंका के उत्तर में वह कहते कि यह सत्य नहीं है, देखो महर्षि पतञ्जलि ने योगी होने पर योग शास्त्र और शब्द शास्त्र अर्थात् महाभाष्य लिखा, कृष्ण देव ने योगी होने पर कितना परोपकार किया था? प्राचीन समय में कोई ऋषि मुनि **योग से रहित न था** और सब ही उत्तम वैदिक कर्म्म करते थे। वर्तमान समय में क्या स्वामी जी ने योगी होने पर थोड़ा काम किया है? हां यह तो सत्य है कि योगी * व्यर्थ पुरुषार्थ नहीं करते।

पण्डित जी कहा करते थे कि वर्तमान पश्चिमी आयुर्वेद योग के ही न होने के कारण अधूरा बन रहा है। टूटी हुई अङ्ग हीन कला से उसकी क्रियामान उत्तम दशा का पूर्ण अनुमान जैसे नहीं हो सकता, वैसे ही मृत शरीर के केवल चीरने फाड़ने से जीते हुए क्रियामान शरीर का पूर्ण ज्ञान नहीं मिल सकता। एक योगी जीते जागते शरीर की कला को योग दृष्टि से देखता हुआ उसके रोग के कारण को यथार्थ जान सकता और पूर्ण औषधी बतला सकता है परन्तु प्रत्यक्षप्रिय पश्चिमी वैद्यक विद्या यह नहीं कर सकती। जब कोई विद्यार्थी उन से प्रश्न किया करता कि मैं आत्मोन्नति के लिये क्या करूं, तो वह उत्तर में कहते कि

---

* Fashionable or Useless.

अष्टाध्यायी से लेकर वेद पर्य्यंत पढ़ो और **अष्टांग योग** के साधन करो । विवाह की बात करते हुए एक समय वह कहने लगे कि हम अपने लड़के को जब वह स्वयं विवाह करना चाहेगा तो यह प्रेरणा कर देंगें कि पाताल देश में जाकर वहां किसी योग्य स्त्री को आर्य्यबनाओ और उस से विवाह करो ॥

वह अष्टाध्यायी श्रेणी के सर्व विद्यार्थियों को उपदेश किया करते थे कि प्रातः काल सन्ध्या के पश्चात् एक घण्टा सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा करो, वह कहते थे कि मैंने ११ बेर सत्यार्थ प्रकाश को विचार पूर्वक पढ़ा है, और जब जब पढ़ा नए से नए अर्थों का भान मेरे मन में हुआ है । वह कहते थे कि शोक की बात है कि लोग सत्यार्थ प्रकाश को कई बेर नहीं पढ़ते । एक अवसर पर प्राणायाम का वर्णन करते हुए वह कहने लगे कि असाध्य रोगों को यही प्राणायाम दूर कर सकता है । उन्होंने बतलाया कि कभी कभी एक हृष्ट पुष्ट मनुष्य को प्राणायाम निर्बल कर देता है, परन्तु थोड़े ही काल के पश्चात् वह मनुष्य बलवान् और पुष्ट हो जाता है। उनका कथन था कि सृष्टि में सब से उपयोगी वस्तु बिन मोल मिला करती है, इस लिये सब से उत्तम औषधी असाध्य रोगों के लिये वायु ही है, और यह वायु प्राणायाम की रीति से हमें औषधी का काम दे सकती है ॥

एक बेर लाला शिवनारायण अपने पुत्र को पण्डित जी के पास ले गये और कहने लगे कि पण्डितजी इसको मैं अष्टाध्यायी

पढ़ाता हूं और मेरा विचार है कि इस को अंग्रेज़ी न पढ़ाऊं आपकी क्या सम्मति है ? पण्डित जी बोले हमारी आप के अनुकूल सम्मति है, जब सौ में ९५ पुरुष विना अंग्रेज़ी पढ़ के रोटी कमा सकते हैं तो आप को रोटी के लिये भी इस को अंग्रेज़ी नहीं पढ़ानी चाहिये ॥

एक बेर मेरे साथ पण्डित जी ने प्रातःकाल भ्रमण करने का विचार किया। मैं प्रातः काल ही उन के गृह पर गया और सब से ऊपर के कोठे पर उन को एक टूटी सी खाट पर विना बिछौने और सिरहाने के सोता पाया। मैंने एक ही अवाज़ दी तुरन्त उठ कर मेरे साथ हो लिये। मैंने पूछा पण्डित जी आप को ऐसी खाट पर नींद आगई, कहने लगे कि टूटी खाट क्या निद्रा को रोक सकती है ? मैंने कहा कि आप को ऐसी खाट पर सोना शोभा देता है, कहने लगे की सोना ही है कहीं सो रहे, बहुधा कंगाल लोग भी जब ऐसी खाटों पर सोते हैं तो हम क्या निराले हैं ? इस प्रकार बात चीत करते हुए मैं और लाला जगन्नाथ जी पण्डित जी के साथ नगर से दूर निकल गये। रास्ते में उन्हों ने **छोटे छोटे ग्रामों में रहने के लाभ दर्शाये,** फिर घोड़ों की कथाऐं वर्णन करते हुए हमें निश्चय करा दिया कि पशुओं में भी हमारे जैसा आत्मा है और यह भी सुख दुःख को अनुभव करते हैं। गोल बाग में आकर उन्होंने हमे बतलाया कि वनस्पति में भी आत्मा मूर्छित अवस्था में है और एक फूल को तोड़ कर बहुत कुछ विद्या

विषयक बातें वनस्पतियों की सुनाते रहे। इतने में लाला गणपत-राय जी भी आ मिले और हम सब एकत्र होकर पण्डित जी की उत्तम शिक्षायें ग्रहण करने लगे। उन्होंने गन्दे विषयासक्ति के दर्शाने वाले कल्पित * ग्रंथों के पढ़ने का खंडन किया और पश्चिमी देशों के बड़े बड़े इन्द्रियाराम धनी पुरुषों के पापमय जीवनों का वर्णन करते हुए कहा कि **निर्वाह मात्र के लिये धर्म से धन प्राप्त करना** साहूकारी है **न कि पाप से रुपया कमा कर विषय भोग करना अमीरी** है। अन्त में उन्हों ने कहा कि पूर्ण उन्नत मनुष्य का दृष्टान्त ऋषि जीवन है। फिर उन्होंने कहा कि वह प्राचीन ऋषि, नहीं जान पड़ता कि कैसे अद्भुत विद्वान् होंगे जो अपने हाथों से, अनुभव करते हुए यह लिख गये कि संसार में ईश्वर इस प्रकार प्रतीत हो रहा है जैसा कि खारे जल में लवण विद्यमान् है॥

एक समय लाहौरमें ईसाइयों के § स्थान में एक अंग्रेज़ ने व्याख्यान दिया जिस में उसने मैक्समूलर आदि के प्रमाणों से वैदिक धर्म्म को दूषित बतलाया। पण्डित जी भी वहां गये हुए थे। आते हुए रास्ते में कहने लगे कि हम इस के कथन से सम्मत नहीं हैं। क्या यह हो सकता है कि हम भारतवर्ष के निवासी लण्डन में जाकर अंग्रेज़ी के प्रोफैसरों के सन्मुख "शेक्सपीअर" और

* Impure Novels. § Hall of the Christian Young-men's Association Lahore.

"मेकाले" की अशुद्धियां निकालें और अंग्रेज़ी शब्दों के अपने अर्थ अंग्रेज़ों को सुना कर कहें, कि तुम "शेक्सपीअर" नहीं जानते हम से अर्थ सीखो। क्या "मैक्समूलर" वेदों के अर्थ अधिक जान सकता है अथवा प्राचीन ऋषि मुनि? **निरुक्त आदि में वेद के अर्थ मिल सकते हैं न किसी विदेशी की कल्पना वेद के अर्थ को जान सकती है ॥**

जब कोई उन से स्वामी दयानन्द जी के जीवन चरित्र के विषय में प्रश्न करता तो वह सब काम छोड़ कर उस के प्रश्न को सुनते और उत्तर देने को प्रस्तुत हो जाते। एक बेर किसी भद्रपुरुष ने उनको कहा कि पण्डित जी आप को स्वामी जी के **योगी होने के विषय में** इतनी बातें विदित हैं, आप क्यों नहीं उनका जीवन चरित्र लिखते? **उत्तर में बड़ी गम्भीरता से कहने लगें, कि हां, यत्न तो कर रहाहूं कि स्वामी जी का जीवन चरित्र लिखा जावे, कुछ कुछं आरम्भ तो कर दिया है। उसने कहा कि कब छपेगा, बोले कि आप पत्र पर जीवन चरित्र समझ रहे हो, हमारे विचार में स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र जीवन में लिखना चाहिये। मैं यत्न तो कर रहा हूं कि अपने जीवन में उनके जीवन को लिख सकूं ॥**

एक बेर अमृतसर समाज के उत्सव पर व्याख्यान देते हुए, उन्होंने दर्शाया कि स्वामी जी के महत्व का लोगों को २०० वर्ष के पीछे बोधन होगा जब कि विद्वान् पक्षपात से रहित हो

कर उन के ग्रन्थों को विचारेंगे। अभी लोगों की यह दशा नहीं कि योगी की बातों को जान सकें। वह कहा करते थे कि जैसे पांच सहस्त्र वर्ष व्यतीत हुए कि एक महाभारत युद्ध पृथिवी पर हुआ था, जिस के कारण वेदादि शास्त्रों का पठन पाठन पृथिवी पर से नष्ट होता गया, वैसे ही अब एक और विद्यारूपी महाभारत युद्ध की पृथिवी पर सामग्री एकत्र हो रही है, जब कि पूर्व और पश्चिम के मध्य में विद्या युद्ध होगा और जिसके कारण फिर वेदों का पठन पाठन संसार में फैलेगा और इस आत्मिक युद्ध का बीज स्वामी दयानन्द ने आर्य्यसमाज रूपी साधन द्वारा भूगोल में डाल दिया है॥

एक अवसर पर किसी पुरुष के उत्तर में उन्हों ने बतलाया कि स्वामी जी ने अजमेर में कहा था कि महाराजा युधिष्ठिर के राज से पहले चूहड़े अर्थात् भंगी आर्य्यावर्त्त में नहीं होते थे। आर्ष ग्रन्थों में भंगियों के लिये कोई शब्द नहीं है॥

एक बेर, लाहौर में जब कि लोग अष्टाध्यायी पढ़ाने के विपरीत युक्तियां घड़ रहे थे, तो उन्हों ने समाज में एक व्याख्यान इस विषय पर दिया कि "लोग क्या कहेंगे ‡" जिस में उन्हों ने सिद्ध किया कि जब कोई नया शुभ काम आरम्भ किया जाता हैं तब ही करने वालों के मन में उक्त प्रकार प्रश्न उठा करते हैं, परन्तु दृढ़ता के आगे ऐसे ऐसे प्रश्न स्वयं ही शान्त हो जाया करते हैं॥

‡ What will people say ?

आरोग्यता सम्बन्धी बहुत सी बातें वह हम को बतलाया करते थे। उन का कथन था कि प्रातः काल भ्रमण करने के पीछे पांच वा सात मिनट आते ही लेट जाना चाहिये, ईस से मल उतर आता है यदि रास्ते में भ्रमण करते समय एक संतरा खा लिया जाए तो और भी हितकारी है। वह मद्य, मांस तमाकू, भंग आदि का खाना पीना सब को वर्जन करते थे रोटी के संग जल पान करने को अहित दर्शाते थे। वह स्वयं, जल रोटी खाने के कुछ काल पीछे पान करते थे । एक बेर स्वामी स्वात्मानन्द जी ने उन से प्रश्न किया, कि वीर क्षत्रियों को मांस खाने की आवश्यकता है वा नहीं ? इस के उत्तर में उन्होंने यूनान देश के योद्धाओं, नामधारी सिक्खों और ग्राम निवासी वीरों के दृष्टान्तों से सिद्ध कर दिया कि क्षत्री को मांस खानें की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, उन्हों ने अर्जुन के दृष्टान्त से विदित किया कि वीरता का एक कारण आत्मिक संकल्प आदि हैं। क्योंकि जिस समय अर्जुन ने विचार किया था कि मुझ को नहीं लड़ना चाहिये वह कायर हो गया, परन्तु जब कृष्णदेव के उपदेश ने उस के मनोभाव पलट दिये तो वही अर्जुन फिर वीर हो कर लड़ने लगा। अन्त में उन्होंने कहा कि अखण्ड ब्रह्मचर्य वीरता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। स्वात्मानन्द जी मान गये कि विना मांस भक्षण किये क्षत्री वीर हो सकते हैं॥

एक बेर उन्हों ने लाला केदारनाथजी को उपदेश किया कि

जल की नवसार चढ़ाया करो और "ऐनक" लगाना आंखों पर से छोड़ दो। उन्हों ने मुझे तथा अन्य भाईयों को बिच्छु काटने स्मृति के बढ़ाने, और शीतला के रोकने की औषधियें बतलाईं थीं ॥

अकतूबर १८८९ ई० में उन्हों ने एक पत्र मुझे अमृतसर भेजा था। इस पत्र का विषय सर्वहितकारी है, इस लिये नीचे उस का अनुलेख लिखा जाता है। इस के पाठ से उनके आशामय जीवन का बोधन होता है ॥

" NAMASTE—I am here not knowing how I am. I am however more hopeful than ever of a better future. I hope the pain will soon leave you. There is nothing to despair so long as there is even one breath of life in the body. For even one moment of pious thoughts in my opinion recompensates hundreds of indolence and vicious deeds. Why should we despair while " the world is as we make it " Let us then resolve just now and make it better. "

LAHORE : Yours ever affly,
15th October, 1889. (Sd) GURU DATTA VIDYARTHI

(अर्थ) " नमस्ते ! मैं इस जगह हूं नहीं जानता कि कैसे हूं तथापि भावी दशा के उत्तम होने की पूर्ण आशा है। मुझे

आशा है कि आप पीड़ा से शीघ्र रहित हो जाएंगे। जब तक एक श्वास भी शरीर में है, तबतक निराश होने की कोई बात नहीं। क्यों कि मेरी सम्मति में एक क्षण जिस में शुद्ध भाव धारण किये जाएं, सैंकड़ों प्रमाद और पापमय कर्म्मों को नाश करने के सामर्थ्य हैं। हम निराश क्यों हों, भोग रूपी संसार को जैसा चाहें हम ही बनाते हैं। आओ हम अभी संसार को उत्तम बनाने की प्रतिज्ञा धारण करें" ॥

लाहौर
१५ अकतूबर ८९

आप का प्रेमी,
गुरुदत्त विद्यार्थी

एक बेर जब कि वह रोग से ग्रसित थे, तब श्रीयुत मलिक ज्वालासहायजी ने उन से पूछा कि पण्डित जी आप को कष्ट तो नहीं होता, उत्तर में कहने लगे कि मलिक जी जब हमने निश्चय कर लिया कि **आत्मा अमर** है, तो फिर हमें कोई भय और कष्ट नहीं हो सकता, कष्ट तो उन के लिये है, जो आत्मा को अमर नहीं जानते ॥

हम विस्तार पूर्वक पण्डित जी का जीवन चरित्र नहीं लिख रहे, केवल मोटे मोटे दृष्टान्तों से सिद्ध कर रहे हैं, कि उन का जीवन किस प्रकार का अद्भुत और विचित्र था। साधारण सी बात चीत में वह गूढ़ से गूढ़ विद्या और कठिन से कठिन धार्मिक साधनों की महिमा प्रकाश किया करते थे। उन का जीवन प्रेम

से भरपूर होने के कारण लोगों के हृदयों को आकर्षण करता था। उन की बुद्धि तथा स्मरणशक्ति का विचार करते हुए हम उनको "फैज़ी" अथवा "बैलनटायन" पाते हैं। उन के न थकने वाले पुरुषार्थ में हमें यूनान के "डीमोस्थनीज़" के पुरुषार्थ का अनुभव होता है। उन के मृत्युभय से रहित होने में हमें "सुकरात" का इस समय में दृष्टान्त मिलता है। उन का निराभिमान **विद्यार्थी** शब्द से जो वह अपने नाम के पीछे लिखते थे प्रकट हो रहा है। वह अपने **दंभ रहित जीवन** तथा परोपकार के कारण उन पुरुषों से जो कि आर्य्य सभासद भी नहीं, अत्यन्त मान पा रहे हैं। उन के सार गर्भित व्याख्यान और रत्नवत ललित अत्युत्तम लेखों पर बुद्धिमान् विदेशी भी लट्टु हो रहे हैं॥

ऐसी अद्भुत और विचित्र उत्तम शक्तियों के रखने वाले गुरुदत्त को किस शक्ति ने आर्य्यसमाज की ओर खैंचा? पश्चिमी विद्या के भयानक नास्तिकपन से निकाल किसने उन को ईश्वर उपासक बनाया? किस ने उनको पश्चिमी विद्याकी अपेक्षा संस्कृत साहित्य की अनुपम उत्तमता दर्शादी? ऐसे **संस्कारी**, उद्योगी वीर को किस ने स्वामी दयानन्द के ऋषि जीवन पर लट्टु कर दिया? सांसारिक मान, पदवी और शोभा को किसने उन से छुड़ा कर, एक मात्र योग्य साधनों की ओर झुका दिया? क्या उस **संस्कारी, पुरुषार्थी** को जो "यूनीवर्स्टी" की सर्व परी-

क्षाओं में प्रथम ही रहा करता था, वकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण होना कठिन था ? क्या वह " डिपटी कमिश्नर " साधारण यत्न करने पर नहीं हो सकता था ? क्या यदि वह पुस्तक समय अनुकूल लिखता तो उसकी पश्चिमी लोगों की ओर से और भी विद्या उपाधियां न मिलतीं ? यह सब कुछ उस को मिल सकता था, परन्तु न मिला, उस से किसी ने छीना नहीं किन्तु **उसने दंभ रहित निष्काम वैरागी की तरह अपनी इच्छा से त्याग दिया** । क्या किसी शास्त्रार्थ में हार कर उसने संस्कृत पढ़ने का प्रण किया था ? क्या उस के अन्तरीय संशय किसी पुस्तक के पाठ करने से निवृत्त हुए थे ? उस के कान में किस ने गुरुमंत्र दिया था कि दयानन्द के ऋषि जीवन को तुम ने अपने जीवन में धारण करना ? क्या उस से यह सर्व क्रिया बिना ही निमित्त हो रही थीं ? नहीं नहीं कारण के बिना कोई कार्य्य नहीं होता, उत्तम शक्ति रखने वाले गुरुदत्त के आत्मा को एक अन्य आत्मा ने यह सब कुछ करने के लिये बिन बोले प्रेरा था । एक ईश्वरीय बलधारी आत्मा की ही शक्ति थी कि गुरुदत्त से आत्मा की काया पलटा दे और यह काया पलटाने वाला महर्षि योगी दयानन्द का ही बलवान् आत्मा था ॥

महर्षि दयानन्द का जब अजमेर में मृत्यु समय आ रहा था, तो विद्यार्थी गुरुदत्त मन की आंखों से इस अद्भुत दृश्य को देख रहा था । जिस शान्ति और भय रहित रीति से ऋषि ने प्राण

त्यागे, वह शान्ति और निर्भयता गुरुदत्त के संशयात्मिक मन को ईश्वरसत्ता का न भूलने वाला उपदेश दे रही थी। उधर ऋषि का आत्मा शरीर छोड़ रहा था इधर गुरुदत्त का आत्मा नास्तिकपन से डोल रहा था। कई पुरुषों को गुरुदत्त ने मरते देखा, परंतु किसी की मौत का उस को स्मरण भी न रहा। दयानन्द की मौत एक संसारी पुरुष की मौत न थी, यह एक ब्रह्मोपासक योगी की मृत्युथी। उस योगी की, जो आयुभर उपासना द्वारा ईश्वरीय बल आत्मा में धारण करता रहा हो, मृत्यु का रूप भयानक नहीं किन्तु भद्र ही प्रतीत होता है। उपासक के तपस्वी आत्मा को भय कहीं दृष्टि नहीं पड़ता। दयानन्द के निर्भय आत्मा ने शरीर छोड़ते हुए गुरुदत्त को दर्शा दिया कि योगी इस प्रकार मृत्यु पर विजय पाया करते हैं। उपासना से जो बल प्राप्त हुआ है उस को प्रत्यक्ष कर योगी दयानन्द की मौत ने दिखा दिया। गुरुदत्त को निश्चय हो गया कि ईश्वर ही महान् शक्ति है जिस से बल धारण करने पर एक मनुष्य मृत्यु के समय निर्भय हो बिन बोले आकर्षण द्वारा दूसरे आत्मा को वशीभूत करके **नव जीवन** का उपदेश दे सकता है। ऋषि के आत्मा को बल देने वाली शक्ति सदैव सब को बल देने के लिये विद्यमान् है। इसी अखण्ड शक्ति से बल लाभ करने के साधन गुरुदत्त करता रहा। इसी शक्ति की निर्माण की हुई वेद विद्या को गुरुदत्त, विद्यार्थी वत् पढ़ता रहा। इसी शक्ति के धारण करने वाल दयानन्द रूपी

जीवन को गुरुदत्त अपना जीवन आदर्श समझता रहा । ईश्वर उपासना के कारण वह, पुरुषार्थ, ज्ञान और प्रेम से युक्त होता हुआ अपने क्षणभङ्गुर जीवन में विद्युत् की सी उत्तम चमक दर्शा गया ॥

ब्रह्मयज्ञ की सिद्धि, ब्रह्मोपासना का फल अखंड ब्रह्मसूर्य्य की तेजोमयी ज्योति का प्रकाश ऋषि ने अपनी मृत्यु पर दिखा दिया। महात्मा गुरुदत्त ने उस को अनुभव करते हुए अपनी काया सचमुच पलटा ली ।। क्या हम इस समय जिनके जीवन मलीन हो रहे हैं, क्या हम जो दुःखों से पीड़ित और क्लेशों से व्याकुल हैं, इन प्रत्यक्ष दृष्टान्तों से कुछ शिक्षा **जीवनसुधार** के लिये प्राप्त नहीं करेंगे ? जीते, जागते आत्माओं पर काम करने और उन को धर्म पथ में लगाने के लिये मनुष्य के मूल धन आत्मा पर विजय पाने और अपनी काया पलटाने के लिये, भय, सन्देह और निराश जीवन के कुटिल मार्ग से हट कर आशामय, निर्भय जीवन व्यतीत करने के लिये, कायर आत्मा को शूरवीर, महाबली बनाने के लिये, बन्धुगण आओ, हम भी सर्वोत्तिम बलमय महान् शक्ति से, ब्रह्मयज्ञ रचते हुए आत्म बल धारण करने की सच्ची प्रतिज्ञा करें ॥

* ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ *